CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Si S

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पावक स्फुलिंग

[सुश्री विमला ठकार के हिन्दी प्रवचनों और प्रश्नोत्तरियों में से चुने हुए अंश

संपादिका

प्रेमलता शर्मा

प्रकाशक

विमल प्रकाशन ट्रस्ट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम संस्करण, फरवरी १९७१

मूल्य ३)

मुद्रक

तारा प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी

प्रकाशक

विमल प्रकाशन ट्रस्ट की ओर से

दी न्यू ऑर्डर बुक कम्पनी

अहमदाबाद–६.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्पादकीय निवेदन

यह संकलन सुश्री विमला ठकार के जिन हिन्दी प्रवचनों और प्रश्नोत्तरियों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है, उनका काल है सन् १९६७-७० और स्थान हैं—अहमदाबाद, आजोल (गुजरात), बम्बई और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय। प्रथम अनुबन्ध में व्यक्तिगत पत्रों में से कुछ अंशों का संकलन दिया गया है। वैसे तो विमल बहन के पत्र सहस्रों की संख्या में देश-विदेश में लोगों के पास होंगे। उस अनन्त राशि में से सागर की बूँद की भाँति जो थोड़े से पत्र हमें सुलभ थे उनके आधार पर यह अनुबन्ध प्रस्तुत है। आशा है भविष्य में कभी कुछ बड़े पैमाने पर यह संकलन किया जा सकेगा। द्वितीय अनुबन्ध में व्यक्तिगत वार्तालापों के कुछ अंश प्रस्तुत हैं। जिन शीर्षकों में वाक्यों अथवा वाक्य-समूहों का संकलन किया गया है, उन्हें सर्वत्र अकारादि-क्रम से रखा गया है। आशा है यह क्रम पाठकों के अनुकूल होगा।

न्यू ई ५,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी—५

प्रेमलता शर्मा
३१. १. ७१
(वसन्तपञ्चमी)

उर्मिला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषयानुक्रमणी

विषय	पृष्ठ संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
अज्ञात	१	अहिंसा	१८	उपाधि	२८
अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ, शक्तियाँ	१	आकलन	१९	ऊर्जा	२८
अधिकार	३	आग्रह–निषेध	२१	एकता	२८
अध्यात्म	३	आत्म (-उपलब्धि, -दशा,		कर्म-क्रिया	२९
अन्धकार	६	-परिचय, -विलोपन, -संमोहन,		काल	३०
अभय	६	-साक्षात्कार)	२१	क्रान्ति	३०
अर्थव्यवस्था	१०	आनन्द	२४	खण्डित दर्शन	३३
अवलोकन, निरीक्षण	१०	आसक्ति-विरक्ति	२६	गति	३३
अवसर	१४	आहार	२७	गम्भीरता	३४
अहंकार	१४	उत्तेजना	२७	गरीबी	३४
अहं-प्रत्यय	१८	उधार	२७	गुरु	३५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय	पृष्ठ संख्या
चित्तशुद्धि	३७
चुनाव	३७
जड़, चेतन	३८
जन्म-मरण	३८
जिज्ञासा	३८
जीवन	४३
जीवन-विभाजन	५०
तटस्थता	५१
तन-मन का परिचय	५२
धर्म-अध्यात्म	५३
ध्यान	५४
नम्रता	५७
निग्रह	५८
निद्रा-जागृति	५८
निर्गुण, निराकार	५८
निर्विकार, निर्विचार	५९
परिग्रह	६०
प्रतिक्रिया	६०
प्रतिसाद	६१
प्रतीक	६२
प्रत्यय	६२
प्रभुत्ववाद	६२
प्रमाणवाद	६२
प्रयत्न	६३
प्रश्न	६३
प्रारब्ध	६३
प्रार्थना	६४
प्रेम	६६
बन्धन	६८
बन्धन-मुक्ति	७१
बुद्धि	७१
भक्ति	७२
भय	७२
भारत	७३
भाव-भावना	७४
मन	७४
मन्दिर	८१
महत्त्वाकांक्षा	८१
मानव, मानवता	८२
मार्गदर्शन	८४
मिलन	८५
मुक्ति, मोक्ष	८५
मृत्यु	८६
मैत्री	८७
मौन	८८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय	पृष्ठ संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
यथार्थ दर्शन	९१	शिष्य	१०४	समाधि	११९
वर्ग-विभाजन	९२	शून्यता	१०४	सहजता	१२०
वर्तमान से प्रेम	९२	शोषण	१०५	सहजीवन	१५०
विकास	९३	संग्रह-त्याग	१०६	सहायता	१२२
विचार, विकार	९३	संन्यास	१०६	साक्षित्व	१२२
विचार-संग्रह	९४	संवाद	१०७	साधना	१२४
विज्ञान	९५	संस्कार	१०७	सावधानता	१२५
विद्रोह	९५	सख्य	१०९	सुख-दुःख	१२६
विवेक	९६	सगुण, साकार	१०९	सुख-संवाद	१२७
विश्राम	९७	सत्य	११०	सुरक्षा	१२७
व्रत	९८	सत्संग	११२	सेवा	१२९
शब्द	९८	सजीव अनुभूति	११५	स्त्री	१२९
शरणागति	१०२	समग्रता	११५	स्पन्दन	१३०
शरीर-विज्ञान	१०२	समस्या	११७	स्पर्धा	१३१
शिक्षण	१०३	समाज	११९	स्मृति	१३१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय	पृष्ठ संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
स्वजीवन	१३२	ऋजुता	१४२	योग	१४६
स्वभाव	१३६	एकता (देश की)	१४२	लोकापवाद	१५०
स्वसंवेद्यता	१३६	चेतना के स्तर	१४२	वासना	१५०
स्वस्थता	१३७	जागृति	१४३	शुद्धि	१५०
स्वाधीनता	१३८	जिज्ञासा	१४३	शुभेच्छा	१५१
हिंसा	१३६	जीवन	१४४	सत्य	१५१
हेतु, प्रयोजन	१३६	देहसम्बन्ध	१४४	सत्संग	१५२
		पञ्चम पुरुषार्थ	१४५	सन्त	१५३
प्रथम अनुबन्ध		पश्चिम की स्थिति	१४५	समग्रता	१५३
अनासक्ति	१४०	प्रभुकृपा	१४६	साधना	१५३
असत्य	१४०	प्रेम	१४७	सावधानता	१५४
असुरक्षा	१४०	बन्धन	१४८	स्मृति	१५४
अहंकार	१४१	भावदेह	१४८	स्वजीवन	१५४
आत्मसमर्पण	१४१	मधुराद्वैत	१४८		
आत्म सम्बन्ध	१४२	मैत्री	१४६	**द्वितीय अनुबन्ध**	१६१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'विमल' महानल से विकीर्ण

पावक स्फुलिंग

जिन में

जागृति के मंगल स्वर,
प्रेम की पावक ज्वाला,
जीवन-निर्झर के शीतल तुषार,
आनन्द-सागर के उत्ताल तरंग,
कृपा-कठोर सत्य का तीक्ष्ण स्पर्श,
सख्य का उन्मुक्त सुख-संवाद,
स्वानुभूति का रसमय प्रसाद,
सहज समन्वित हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अज्ञात

अज्ञात की सुन्दरता ही इसमें है कि उसमें अज्ञात भवितव्यता है, विश्वसनीयता का अभाव है। जीने का मजा तो इसी में है कि उसमें अनिश्चितता है।

किसने कहा कि अज्ञात में भय है ? जीवन तो वह है जो निर्भय साहस से खड़ा होता है। अज्ञात में ही तो जीवन का 'रोमांस' है।

अज्ञात से भय खाने वाले जीवन को तोता बना कर सोने के पिंजड़े में बन्द करके उसे मोती का चारा चुगाने जाते हैं। उनके हाथ में पिंजड़े रह जाते हैं, जीवन निकल जाता है।

अज्ञात के साथ भय को जोड़ने वालों ने जीवन के साथ बड़ा अन्याय किया है। नित्यनूतनता की शक्ति केवल अज्ञात में है, ज्ञात में नहीं।

अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ, शक्तियाँ

अतीन्द्रिय शक्तियों का अध्यात्म से कोई भी सम्बन्ध नहीं। उनका उपयोग जिसे करना हो, वह भले ही करे, लेकिन उन्हें आध्यात्मिकता न मानें।

अतीन्द्रिय अनुभूतियों का अर्थ है—आपके अचेतन मन में जो पड़ा हुआ है, उसका साक्षात्कार। वह कोई बहुत कठिन काम नहीं है। उसमें कहाँ का अध्यात्म है ?

अपनी संवेदना-शक्ति को परिष्कृत और परिमार्जित करके इन्द्रियातीत सृष्टि में विहार करते हुए अनुभूतियों का उपभोग करना अध्यात्म नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुभूति ऐन्द्रिय हो या इन्द्रियातीत हो; जहाँ तक अनुभूति है, वहाँ तक अनुभव लेने वाला अहंकार उपस्थित है। उसने स्थूल विषयों को हटा दिया और सूक्ष्म, अव्यक्त सृष्टि को उपभोग का विषय बना लिया।

अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ जिन्हें होती हैं, उनका अहंकार पुष्ट होता जाता है। वे यह भी नहीं जानते कि हम फँसे हुए हैं। उनका अहंपवित्रवाद बढ़ता जाता है।

* * * *

इन्द्रियग्राह्य सुख में जिस प्रकार नशा है. वैसे ही अतीन्द्रिय अनुभूतियों में भी नशा है, मादकता है। वहाँ भी सुख-दुःख है। वह स्वास्थ्य नहीं है।

* * * *

यह न समझें कि जितना व्यक्त और इन्द्रिय-गोचर है, उतना ही जगत् है। व्यक्त सृष्टि से हट कर जब अव्यक्त में प्रवेश करते हैं तब अनन्त प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं। लेकिन उनका आत्मसाक्षात्कार से, साक्षित्व से कोई सम्बन्ध नहीं। साक्षित्व में अनुभव कौन करेगा ? कर्तृत्व की भावना न हो, कर्ता-भोक्ता उपस्थित न हो तो अनुभव कौन करेगा ?

अतीन्द्रिय अनुभूति अध्यात्म नहीं है। वह तो केवल शक्तियों का विकास है, केवल सात्त्विक विषय है। आत्मा के क्षेत्र में अनुभूति का अवकाश नहीं; वहाँ कुछ प्राप्तव्य नहीं, कुछ कर्तव्य नहीं।

आप की भीतर की सृष्टि भी बड़ी रूमानी, 'रोमांटिक' है। उसमें कुछ स्वयम्भू नाद है, कुछ ज्योति है। आँख और मन के पीछे बैठी हुई उस ज्योतिर्मयी अग्निशिखा को देखना या भीतर के अनाहत नाद को सुनना—यह कोई अध्यात्म नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो वहिर्मुख दृष्टि को अन्तर्मुख बनाते हैं और अन्तर्यात्रा पर चल पड़ते हैं, उन्हें अतीन्द्रिय सृष्टि में से हो कर गुजरना पड़ता है। लेकिन वहाँ रुकना नहीं है, फंसना नहीं है और भूल से भी उन्हें आत्मा की अनुभूति समझना नहीं है।

अधिकार

ग्रहणशक्ति को अधिकार कहा है। संवेदनशीलता और जिज्ञासा की जिस की तैयारी हो, वह अधिकारी है और जिस को जिज्ञासा नहीं है, वह अनधिकारी है। अर्थित्व ही अधिकार है। सत्य ही जिस का 'अर्थ' है वह हो गया साधना का अधिकारी।

अध्यात्म

अध्यात्म आन्तर यात्रा है। अपने भीतर जाना है। वाहर नहीं कुछ करना होता।

अध्यात्म है अपनी उपलब्धि में जीना, आत्मप्रत्यय के आलोक में जीना। उपलब्धि मनुष्य को हमेशा एकता की ही होगी, क्योंकि जीवन का स्वभाव है एकता।

अध्यात्म है आत्म-निर्भरता। दूसरे के बनाये हुए रास्ते पर चलने में क्या मजा ? एक-एक कदम बढ़ा कर अपने लिये पगडण्डी बनाते चलने में ही आनन्द है।

अध्यात्म नितान्त व्यक्तिगत विषय है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने लिये खोज करना है। जैसे दूसरे के लिये खाया नहीं जा सकता, वैसे ही दूसरे के लिये सत्य को पाया नहीं जा सकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्यात्म सर्वथा व्यक्तिगत विषय है : ऐसी उसकी पवित्रता है। किन्तु आजकल तो गोपनीयता को भी लोग पाप समझने लगे हैं।

अध्यात्म तो व्यक्तियों के परस्पर सहवास में से सहज उपलब्ध होने वाली ऐसी वस्तु है जिस का प्रसारण नहीं हो सकता।

अध्यात्म में ऐसा आदान-प्रदान नहीं चलता कि कोई किसी को उठा कर कुछ दे दे। वहाँ सौदा, सञ्चय, सङ्ग्रह नहीं।

प्रभु के साम्राज्य में कोई सौदा नहीं चलता और खरीद-बेच नहीं हो सकती। यह सौन्दर्य है, यह कृपा है, वरदान है कि अध्यात्म में कोई किसी का शोषण नहीं कर सकता।

अध्यात्म को संगठन का, संस्था का रूप देना ऐसा अपराध है जो कभी धुल नहीं सकता।

* * * *

अध्यात्म में न कुछ प्राप्त करना है और न कुछ त्याग करना है। अध्यात्म तो करने का विषय नहीं, न करने का विषय नहीं, यह होने का विषय है।

प्राप्ति और संग्रह की भाषा सांसारिक व्यवहारों का अध्यात्म पर आरोपण है। जहाँ कुछ प्राप्य नहीं है, वहाँ भी प्राप्ति कराने के ठेकेदारों से सावधान रहना ही अच्छा।

* * * *

अध्यात्म मानसिक कर्म का विषय नहीं है। चेतना पर से ज्ञान और अनुभूति की परतें हटाते जायें, शून्यता की भी परत हटा दें तो जो शेष रह जाता है, वह रह जाता है। उस में कहीं कुछ करने का नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने, न करने, प्राप्त करने और छोड़ने की भाषा संसार की है, अध्यात्म की नहीं। इसे अध्यात्म के क्षेत्र में ले जाने वालों ने बड़ा नुकसान किया है।

किसी न किसी मानसिक या बौद्धिक क्रिया के द्वारा साक्षात्कार होगा, मुक्ति का हम प्रत्यय करेंगे, यह भ्रम इसलिये है कि हमने नहीं पहचाना है कि मानसिक क्रिया यान्त्रिक क्रिया है। हमने अध्यात्म को भी अपने मन का एक कर्म बना लिया है।

जहाँ तक क्रिया की सम्भावना है, जब तक अनुभूति लेने की वासना है, तब तक अध्यात्म नहीं है।

* * * * *

आत्मा की एकता और अविभाज्यता को पहचानना और उस एकता, अविभाज्यता या अखण्डता में जीना—यह अध्यात्म का मर्म है।

आध्यात्मिक जीवन अलग और भौतिक जीवन अलग—ऐसा नहीं है। जीवन है तो अध्यात्म है, अध्यात्म है तो जीवन है।

हमारे अध्यात्म का हमारे समग्र जीवन के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। भजन-पूजन करते समय जिस गहराई में मनुष्य रहता है, उस उत्कटता के साथ जीवन के सभी व्यवहार वह नहीं करता।

जीवन की समग्रता को पहचानना ही जीवन का अध्यात्मीकरण है। श्वासोच्छ्वास से लेकर जो भी कर्म होते हैं, वे समग्रता के भाव के आलोक में हों, यही अध्यात्म है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्यात्म का पहला सोपान है जीवन की अविभाज्यता को, अखण्डता को पहचानना। भौतिक और आध्यात्मिक—ऐसे दो खण्ड जीवन में नहीं हैं।

भारत में जीवन को आध्यात्मिक और व्यावहारिक—इन दो सत्ताओं में बाँट दिया गया है। व्यवहार के लिये जीवन-मूल्यों की एक शृंखला मानी गई है और अध्यात्म के लिये दूसरी।

भारतीय की नस-नस में एक बहुत गम्भीर भ्रम पड़ा हुआ है कि आध्यात्मिक जीवन अलग है और व्यावहारिक जीवन अलग। एक को कहते हैं पारमार्थिक और दूसरे को भौतिक। यह द्विसत्तावाद भारत के मानस और जीवन को खा गया है। कितना गम्भीर विरोधाभास है! कितनी गम्भीर बीमारी हमको छू गई है, इसका भान तक हमको नहीं है।

*　　*　　*　　*　　*

अध्यात्म के लिए आज भारतवर्ष में जितनी बड़ी चुनौती है, उतनी शायद पहले कभी नहीं थी।

इस देश में राजनैतिक, आर्थिक या सामाजिक परिस्थिति जितनी खेदजनक है, उतनी ही अध्यात्म के नाम पर चलने वाली जीवनपद्धति खेदजनक है, लज्जाजनक है।

*　　*　　*　　*　　*

जब तक निषेध पर आधारित अध्यात्म है, तब तक सच्चे धर्म का जन्म नहीं हो सकता, तब तक सच्चे मानव का जन्म नहीं हो सकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने-आप को पहचानना ही अध्यात्म की साधना है। जब एक बार पहचान लिया कि यह शरीर मैं नहीं हूँ, मन भी नहीं हूँ, बुद्धि से भी मैं परे हूँ, इन सबका सञ्चालन करने वाला मैं हूँ, तो मनुष्य इन सबकी गुलामी से मुक्त होकर एक आनन्द के साम्राज्य में प्रवेश करता है, जहाँ सुख और दुःख के झूले पर झूलना नहीं पड़ता। वहाँ प्रवेश पाकर स्थिर होना, इसी को जीवन कहते हैं। वहाँ से जो गति होगी वह जीवन्त गति है।

*　*　*　*　*

शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विकास से परे अध्यात्म के क्षेत्र में जाना ही अपनी समस्त सम्भावनाओं को खिलाना है।

ऊर्जा की समग्रता या पूर्णता को प्रकट होने का अवसर देना अध्यात्म है।

*　*　*　*　*

अध्यात्म, आत्मसाक्षात्कार जैसी सरल, सुलभ चीज है ही नहीं। उसे हम लोगों ने निगूढ़ता में, और अतीन्द्रिय शक्तियों के चमत्कार में गाड़ दिया है, उसके साथ कुछ गूढ़ अनुभूतियों का रहस्य जोड़ दिया है, रहस्यवाद की सृष्टि की है।

अध्यात्म में चन्द व्यक्तियों का एकाधिकार नहीं है। यह तो मानवमात्र का अधिकार है कि वह धर्म से परे जाकर अध्यात्म में प्रवेश करे। अध्यात्म सामान्य व्यक्ति का काम नहीं—ऐसा कहने वाला आप को ठग रहा है। यह तो प्रत्येक का अधिकार है। जो चाहेगा उसी के लिए सम्भव है।

*　*　*　*　*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समाज में परिश्रम के बिना चार कौड़ी भी नहीं मिलतीं, किन्तु अध्यात्म में तो बिना परिश्रम के हम चाहते हैं। मैंने तो जीवन में यह नहीं पाया कि बिना परिश्रम के भी आत्मोपलब्धि होती है।

अध्यात्म खेल नहीं है। आजकल उसे बुद्धिजीवियों ने, सम्पन्न वर्गों ने शौक का विषय बना लिया है।

अध्यात्म कोई बौद्धिक या भावनात्मक मन-बहलाव का विषय नहीं है। निर्वाह की चिन्ता नहीं, इसलिए एक शौक बना लें—ऐसे बौद्धिक या तथाकथित विद्या-सम्बन्धी शौक का विषय अध्यात्म नहीं है।

* * * *

अध्यात्म एक साहस का काम है; और अध्यात्म नहीं है तो जीवन भी नहीं है।

अध्यात्म है जीवन को किसी भी पद्धति में न बाँधने का साहस। अध्यात्म है—जीवन की गति में, उस की लय में अपने अहंकार का विलय कर के उसी गति में विलीन हो जाना, समरस हो जाना—बल्कि जीवन की गति बन जाना ही अध्यात्म है।

अध्यात्म का अर्थ है प्रतिक्षण जीवन के आलिंगन और स्पर्श के लिये तैयार रहना।

अध्यात्म तो जीवन में छलाँग लगाने वालों का काम है, किनारे बैठ कर हिसाब लगाने वालों का नहीं। उस के लिये बहादुरी चाहिये। कायरता से काम नहीं चलेगा।

अध्यात्म है जीना। इसे आप विशेषित बना देते हैं—'सुरक्षा में जीना' ऐसा मान कर। अपनी सुरक्षा बाहर खोजी जाती है।

* * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुख की खोज अध्यात्म नहीं है। सुख और दुःख न जीवन के तथ्य हैं, न उन की खोज जीवन का प्रयोजन है।

अन्धकार

जब तन की धरती का सहारा छूट जाता है, मन के पंख—विचार और भावना के, झर जाते हैं, तब सर्वांगीण निराधारता, निर्बलता का अनुभव होने लगता है। इस अन्धकार के साम्राज्य में से साधक को गुजरना पड़ता है। इस से लोग भय खाते हैं, क्योंकि निरालम्ब रहने की आदत नहीं है।

मन की क्रियाओं का स्वयमेव शान्त होना निर्विचार अवस्था है। इस अवस्था में प्रवेश होने पर अन्धकार का एक घना साम्राज्य सामने आता है। इसे पश्चिम के रहस्यवादियों ने 'आत्मा की अँधेरी रात' कहा है। मानो किसी सुरंग में से हो कर गुजरना पड़ता है। जिन के संवेग तीव्र हैं, उन की पल भर के लिये यह अवस्था हो सकती है, जिन के संवेग मन्द हैं, उन के लिये लम्बी भी रह सकती है।

यदि साहसपूर्वक, बिना डरे, स्थिर रह कर उस रिक्तता के अन्धकार को देखते रहेंगे तो उस की सुरंग को पार कर के फिर आत्मानन्द के, साक्षित्व के आलोक में पहुंच सकते हैं।

अभय

आत्मप्रत्यय की सुरक्षा में जीने वाले अभय होते हैं।

जिज्ञासा की जागृति के लिये पहली आवश्यकता यह है कि जीवन से जो भय है, उसे निकाल देना होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डरे हुए लोग क्या अध्यात्म की खोज करेंगे ? जिन्हें मृत्यु से भय है, हानि से भय है, जिन के लिए भक्ति, ज्ञान, साधन, तपस्या—सब कुछ, पूरा जीवन ही सौदा है, ऐसे भयग्रस्त मानस में सत्य की जिज्ञासा का स्पर्श नहीं हो सकता। भय से अपने आप को बचाने की तैयारी रखने वाले मानस में जिज्ञासा क्या जागेगी ?

* * * *

हम तो बच्चों को डरना ही सिखाते हैं। सारी शिक्षण-पद्धति और कुछ नहीं, व्यवस्थित रीति से भय का निर्माण करने का साधन है। इसलिए सब से पहले अभय पैदा करना होगा।

* * * *

अभय और निर्भय में अन्तर है। भय के विपरीत भाव को लोगों ने निर्भयता मान लिया है। और निर्भयता का शिक्षण दिया जाता है। भय और निर्भयता मन की भूमिका पर हैं। "निषेधो वर्तते भयस्य यत्र"—यह निर्भय है और "अभावो वर्तते भयस्य यत्र"—यह अभय है।

अर्थ-व्यवस्था

अद्यतन समाज की विविध व्यवस्थाओं में सबसे अधिक दूषित है अर्थ-व्यवस्था। समाजवादी, साम्यवादी, पूँजीवादी इत्यादि सभी देशों में पैसा जीवन का केन्द्र, उपास्यदेवता बन गया है, परस्पर विनिमय का माध्यम नहीं रहा है।

अवलोकन, निरीक्षण

विकार-रहित, निस्तरंग चित्त से देखना अवलोकन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवलोकन महा कठिन कार्य है। किसी प्रकार का पूर्वग्रह नहीं, किसी प्रकार के परीक्षण की आकांक्षा नहीं, किसी भी प्रकार के मूल्यों के चश्मे के बिना देखना—यह है अवलोकन।

व्यवहार में समग्रता लाने के लिये निरीक्षण की साधना का अभ्यास करना चाहिए। आपके देखने में तटस्थता न हो तो बाह्य परिस्थिति पर भी उस का परिणाम होता है। इसलिये निरीक्षण कोई आसान काम नहीं। उस के लिये अखण्ड जागृति रखनी पड़ती है।

* * * *

मन की क्रियाओं, व्यापारों को देखने के लिये जो मौन में बैठते हैं, वे विचारो का आवागमन, तरंगों का उठना-गिरना देखते हैं। उन्हें फिर पता चलता है कि मन से परे भी चेतना का एक विश्व है। विचारों, विकारों, संस्कारों के आवरण में लिपटी हुई चेतना ही मनुष्य का सत्त्व नहीं है।

आप तटस्थ भाव से जब निरीक्षण करेंगे तो मन अपने आप को निःशेष कर देगा।

* * * °

आत्मनिरीक्षण एक विज्ञान है और कला भी है। उस के लिये कीमत चुकाने की तैयारी हो तो उसे जरूर सीखें।

तटस्थ निरीक्षण के विज्ञान और कला पर ही आगे का मौन और शून्यता का साम्राज्य निर्भर है।

* * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निरीक्षण का 'सर्चलाइट' घूमता रहता है। उसके आलोक में जीवन को देखना होता है। इसके लिये साहस चाहिए, क्योंकि तटस्थता के आलोक में अपना जो स्वरूप दिखता है—क्षुद्रता, ईर्ष्या, अहंकार की प्रेरणा, कुल और परम्परा का अभिमान, संप्रदाय और धर्म का अभिनिवेश, आसक्ति—यह सब कुछ देखने पर पता चलेगा कि मानवता दब गई है।

*　　*　　*　　*　　*

सागर में तैरने वालों का यह अनुभव है कि तरंग आने पर उस पर सवार होकर आगे बढ़ा जाता है। उसी प्रकार आप के अचेतन मन में जो विकार-संस्कार पड़े हैं, वे जब प्रतिक्रिया के रूप में ऊपर उठेंगे तब उस तूफान को आप देखेंगे। उसकी उठती हुई गति के गुलाम बन कर निर्णय नहीं करेंगे, लेकिन उसके द्रष्टा बनेंगे।

जब द्रष्टा बन जाते हैं तब बड़ा आनन्द आता है। आपके और आपकी प्रतिक्रिया के बीच द्रष्टा और दृश्य का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

द्रष्टा और दृश्य का सम्बन्ध यानी दर्शन द्रष्टा में समा जाता है और द्रष्टा-भाव भी समाप्त हो जाता है। केवल चैतन्य, की आत्मा की विशुद्ध सत्ता रह जाती है। रह जाता है विशुद्ध अस्तित्व, विशुद्ध चित् सत्ता।

*　　*　　*　　*　　*

बाह्य परिस्थिति को तो आप देखते ही हैं। उसमें से उठनेवाली जो प्रतिक्रिया है, उसके वश होकर व्यवहार न करते हुए, प्रतिक्रिया को भी वैसे ही देख लीजिए जैसे बाह्य परिस्थिति को देखते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार जब देखने लगते हैं तब परिस्थिति और प्रतिक्रिया—दोनों में से आप प्रयास न करते हुए, अलग हो जाते हैं। दोनों से ऊपर उठ जाते हैं। एक ओर से सावधानता और दूसरी ओर से तटस्थता, अलिप्तता, साक्षित्व—ये सध जाते हैं।

अवलोकन का जो दृष्टिकोण है, वृत्ति है, इसमें रहकर जब व्यवहार करने लगते हैं, तब एक तरफ से सावधानता बढ़ती है और दूसरी तरफ से बाह्य परिस्थिति और भीतर से उठने वाली प्रतिक्रियाएँ—इन दोनों को एक साथ देखने की, तटस्थता की शक्ति बढ़ती है। तटस्थता के बिना अवलोकन संभव नहीं है।

* * * * *

अवलोकन में अनुभूति नाम की चीज ही नहीं रहती है। हेतुरहित देखना सध जाता है। किसी वस्तु से कुछ लाभ लेने अथवा उसमें परिवर्तन करने के हेतु से वहाँ दर्शन नहीं होता। हेतुमात्र अहंकार की चेष्टा है। अहैतुक दर्शन को हम अवलोकन कहेंगे।

* * * * *

यह न समझें कि प्रतिक्रियाओं के साक्षित्व में से ऐसी जड़ता आ जाएगी कि कोई आप के साथ कुछ भी करे, आप सहते चले जाएँ। उससे तो बुद्धि सूक्ष्म. तीक्ष्ण बनेगी, तलस्पर्शी दर्शन की एक ऐसी अनोखी प्रतिभा जागृत होगी कि देखा और तत्काल समझा। लेकिन समझ लेने के बाद मनुष्य अपनी शक्ति और समय प्रतिक्रिया में खोएगा नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवसर

आप की जिज्ञासा की उत्कटता ही, अभिमुखता की उत्कटता ही अवसर बन जाती है। अवसर की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है कि कोई उसे लाकर आपको दे देगा।

* * * * *

आपत्तियों को भूल से हम दुश्मन समझ लेते हैं। आपत्तियाँ और विपत्तियाँ तो आवरणों में आवृत अवसर हैं।

अहंकार

'अहं' के केन्द्र से जिस परिधि का निर्माण होता है, वह मनुष्य को वैश्विक चेतना से अलग कर देती है।

अहंकार अधोगति में ले जाता है, क्योंकि वह हमें शरीर से बाँधता है, मन से बाँधता है।

* ° * * *

शरीर की सभी व्याधियों का मूल कारण आयुर्वेद में 'कुपित मल' को बताया गया है। वैसे ही चित्त की रुग्णता की जड़ है 'कुपित अहं'।

सारा जीवन मेरे 'अहं' के केन्द्र के इर्दगिर्द नाचता रहे, इस दृष्टि में ही जहर है। इसी विष की आँच से जीवन झुलसता है।

* * * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानसिक क्रिया ही अहंकार का आहार है। जब यह समझ में आएगा कि समस्त मानसिक क्रियाओं की शान्ति में ही ध्यान के द्वार खुलते हैं, तब अहं के विलोपन का भी मार्ग प्रशस्त हो जाएगा।

मन और बुद्धि के द्वारा जो भी क्रिया होगी उससे अहंकार को ही पोषण मिलेगा। क्रियाओं को शान्त होने देंगे तो अहंकार का पिघलना शुरू होगा।

* * * * *

मनुष्य कहता है—"मैं शरीर नहीं हूँ, मैं मन नहीं हूँ" तो क्या हूँ ? "मैं आत्मा हूँ, ब्रह्म हूँ", लेकिन 'मैं हूँ' जरूर। यह भी अहंकार की ही नयी चाल हो गई। भौतिक और मानसिक से हटे तो अतिमानस में कमाई करने बैठ गये।

पैसा और प्रतिष्ठा कमाने वालों की अपेक्षा अतीन्द्रिय क्षेत्र में कमाई करने वालों का अहंकार बड़ा विकट होता है। उसका नशा उतरता ही नहीं। उससे अपना भी नुकसान है और दूसरों का भी।

* * * * *

अहंकार साधना की भूमि को ही दूषित कर देता है। गंगा की गंगोत्तरी में ही जहर मिला देता है। अहंकार का जहर जिसमें मिला हो ऐसी साधना के कर्म से कभी आत्मोपलब्धि नहीं हो सकती।

अहंकार हमारे इतने प्रबल होते हैं कि मैंने जिसे इष्ट माना, वह राम बड़ा या कृष्ण बड़ा, या महादेव बड़ा—ये झगड़े खड़े होते हैं। क्योंकि वह तो मेरा राम, मेरा कृष्ण, मेरा महादेव बन गया। पूजा तो हम अपने अहं की करना चाहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानसिक कर्म से आत्म-साक्षात्कार करने के अहंकार में लोग पड़े हुए हैं। उनके अहंकार-पुष्टि के साधन, विषय, प्रक्रिया ही बदले हैं। लेकिन चित्त नहीं बदला।

*   *   *   *   *

अहंकार हमेशा संग्रह और परिग्रह सिखाता है। मन में उठने वाली हरेक वृत्ति को अहंकार अपना साधन बनाता है।

अहंकार बड़ा चतुर है, बड़ा कुशल है। वह अपने लिये नये-नये क्षेत्र बना लेता है। गार्हस्थ्य का त्याग किया तो आश्रम बनवा लेता है। फिर कहता है—"मैंने अपनी जीवन-पद्धति, विचार-पद्धति के अनुसार चलने वाले तैयार किये। इतने लोगों का परिवर्तन किया।" दूसरों के साथ लड़ने के लिये और विजय प्राप्त करने के लिये उसे स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म क्षेत्र मिल गया।

अहंकार संग्रह-परिग्रह के विषय बदल देता है, किन्तु उन्हें छोड़ता नहीं। बाहर की स्थूल वस्तुओं को छोड़ दिया तो भीतर का सूक्ष्म परिग्रह ले बैठता है। बाहर का परिग्रह छूट भी जाएगा, लेकिन भीतर का परिग्रह तो ऐसा चिपक कर बैठता है, जैसे कर्ण के कवच कुण्डल हों।

*   *   *   *

अहन्ता अपेक्षाओं का घनीभूत पुञ्ज है। यह सुख-दुःख के आसपास हमें घुमाता रहता है, आनन्द के पास फटकने नहीं देता।

अहंकार ऐसा संग्रह-स्थल है, ऐसा भण्डार है जिस के तल है ही नहीं। वह अतल है, कभी भरता ही नहीं।

*   *   *   *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सब निषेध अहंकार में से पैदा होता है। आत्मनिषेध, आत्मग्लानि और आत्मविषाद—ये अहंकार के रूप हैं। इन में से किसी में पवित्रता नहीं।

मन को देखने से यदि ग्लानि हुई तो समझ लेना कि अहंकार की चेष्टा है। उस ने जो अपनी प्रतिमा बना रखी है, वह टूट रही है।

"मैं ऐसा, एवंगुण-विशिष्ट और मुझे अपने मन का अवलोकन भी मालूम नहीं"—ऐसा भाव उठने पर तो आत्मदया, अवसाद, क्षोभ आदि पैदा होंगे। यह सब अहंकार की लीला है।

* * * *

सुबह से रात तक अन्तःकरण के रंगमंच पर विचारों का, भावनाओं का, विकारों का यह नाटक चलता है। सूत्रधार बैठे हैं जिन्हें आप 'अहं' के नाम से पहचानते हैं।

* * * *

अहंकार के दो ही चरण हैं। एक 'चाहिये' का, दूसरा 'न चाहिये' का। वह दोनों को साथ ले कर चलता है। कभी 'चाहिए' का चरण आगे बढ़ता है तो कभी 'न चाहिए' का। और इनके चरणचिन्ह जो हैं, वही बन्धन-जाल है।

क्षण-क्षण नव-नवीनता से बहने वाले जीवन की गति का, परिवर्तनशीलता का प्रतिरोध करता है अहंकार। परिवर्तनशीलता को स्वीकार कर लेने पर अहंकार के ताण्डव को स्थान नहीं रहता।

* * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अहंकार बड़ा कुशल है। कभी गर्दन सीधी रखेगा तो कभी झुकाएगा भी।

*　　*　　*　　*

अहंकार ही एकमात्र दुर्गन्ध देने वाला तत्त्व है। निरहंकारिता ही जीवन में एकमेव सौरभ है।

अहं-प्रत्यय

'मैं हूं' यह जो भान है, इसका आशय क्या है ? इस की खोज करना चाहिए। यही अध्यात्म की खोज है। अध्यात्म का सार इस में है कि इस 'अहं' स्फुरण को, इस स्पन्दन को देखें जो कि अहैतुक, हमारे किसी कर्तृत्व के बिना, अपने आप भीतर चलता रहता है। ऊपर की परतें हटा कर इस सत्ता को देखना होता है।

*　　*　　*　　*

'अहमस्मि' प्रत्यय छिप गया है आवरणों में। उस पर नाम आरोपित होता है, तन और मन की प्रतिक्रियाओं की पद्धतियां आरोपित होती हैं। परतें चढ़ जाती हैं।

इसे खोजना चाहिये कि मैं कर्म करता हूँ, तो कर्म करने का यह बोध किसे होता है ? और मैं इस कर्म को क्यों कर रहा हूं, इस हेतु का बोध किस को होता है ? जब गहरी नींद में सोये रहते हैं तो भीतर कौन जागता है जो उठने पर कहता है कि बड़ी सुन्दर नींद आई।

अहिंसा

आज संसार में अहिंसा कहीं भी नहीं है। क्योंकि प्रेम की प्रतिष्ठा नहीं है। प्रेम का व्यवहार में प्रकट होना ही तो अहिंसा है। यहाँ तो सफलता की, सत्ता की, शान्ति की प्रतिष्ठा है, जीवन की नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जहाँ विवेक कर के, संतुलन निकाल कर, समझौता निकाल कर, तनावों और दबावों को उपेक्षित कर के जीवन जिया जाता है, वहाँ चित्त में भला प्रेम क्या प्रवेश करेगा ? और प्रेम का व्यवहार में प्रकट होना ही तो अहिंसा है।

आकलन

अन्तर्विश्व में, जीवन के तथ्यों में केवल 'समझना' ही संभव है, 'करना' नहीं। करना-कराना जीवन में वहुत कम है, देखना भर है, समझना भर है। समझना ही आकलन है।

बुद्धिरूपी सन्दंश (चिमटे) से किसी कल्पना या विचार को पकड़ लेना समझना नहीं है। विचारों. भावनाओं, सिद्धान्तों का ग्रहण और संचय बुद्धि से हो सकता है, लेकिन उसका आकलन से कोई सम्वन्ध नहीं। और जीवन के सीधे-सादे तत्वों को समझे बिना जिन्दगी विद्वत्ता में बीत जाती है।

* * * * *

ज्ञान और आकलन में जमीन-आसमान का अन्तर है। आकलन स्वयं ही आचरण में परिणत होता है, पर ज्ञान स्वयं कर्म में परिणत नहीं होता। उसे इस वीच कुछ प्रेरणा या प्रलोभन की जरूरत पड़ती है। 'पाप-पुण्य' के नाम से वही दिये गए हैं।

आकलन को आचरण बनने के लिए व्यक्ति के पुरुषार्थ की अपेक्षा नहीं। इसीलिये जीवन को समझने वाला 'सहज' जीता है। 'यह विष है' यह समझ लेने के बाद उसके प्रति पीने की इच्छा पर संयम नहीं करना पड़ता।

* * * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जानकारी के संग्रह को ज्ञान कहेंगे। आकलन या समझ उससे भिन्न है। ज्ञान का संग्रह हो सकता है— समाज से, ज्ञाति से वंश से। लेकिन आकलन का संग्रह नहीं हो सकता।

मन, बुद्धि के द्वारा ज्ञान और अनुभूतियों का संग्रह ही संभव है, जीवन का आकलन संभव नहीं।

मस्तिष्क का जीवन से सीधा सम्बन्ध नहीं हो सकता; विचार, भावना, नाम, रूप, गुण के माध्यम से होता है। उस सम्बन्ध को आकलन नहीं कह सकते।

* * * * *

जीवन में शुद्धि लाने वाला एक ही पावक तत्त्व है जिसे आकलन कहते हैं। आकलन जहाँ प्रकट होता है वहां अशुद्धि नहीं रह सकती।

आकलन के आलोक में, अज्ञान कितना ही गहरा क्यों न हो, ऐसे ही उड़ जाता है जैसे दीपक के आलोक में अन्धकार। दीपक का आना और अन्धकार का जाना कोई दो स्वतन्त्र क्रियाएँ नहीं। उनका ऐसा अद्भुत, रम्य संबन्ध है कि जहाँ दीपक जला, वहाँ अन्धकार ने मुख छिपाया। अन्धकार की प्राचीनता दीपक के आलोक में बाधक नहीं होती।

* * * * *

मन के मौन में, समग्र मानसिक क्रिया के गतिरोध में आकलन का जन्म होता है। आकलन चेतना की वह अवस्था है जिसमें समग्र मन क्रियातीत अवस्था में रहता है।

ज्ञान और अनुभूति यान्त्रिक क्रिया है और आकलन है जीवन की लय में व्यक्ति की लय का विसर्जित हो जाना। अहन्ताशून्य चेतना और उसके आसपास निरन्तर गतिशील जीवन में कोई प्रतिरोध नहीं रह जाता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आग्रह-निषेध

आजकल सारी दुनिया में दो प्रचण्ड विचार-धाराएँ चल रही हैं—एक संस्कारों के आग्रह की और दूसरी उनके निषेध की। बौद्धिक, वैचारिक, साहित्यिक क्षेत्र में, सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक सभी क्षेत्रों में एक तीव्र, उत्कट संघर्ष, तुमुल युद्ध चल रहा है। वास्तव में दोनों आग्रह व्यर्थ के हैं।

*　　　*　　　*　　　*　　　*

व्यक्ति-प्रामाण्य, ग्रन्थ-प्रामाण्य का आग्रह रखना जिस प्रकार नादानी है, उसी प्रकार उसका निषेध भी नादानी है। प्रामाण्य स्वीकार न करने का भी आजकल एक संप्रदाय बनता जा रहा है।

परम्परा-भंग भी एक प्रकार का परम्पराग्रह बन जाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से इन दोनों के बीच से गुजरना चाहिए। जहाँ से जो सीख सकते हों सीखें, लेकिन कहीं के गुलाम न बनें।

आत्म (-उपलब्धि, -दशा, -परिचय, -विलोपन, -संमोहन, -साक्षात्कार)

जैसे मोटर चलाते समय यह बोध क्षणभर को भी नष्ट नहीं होता कि मोटर मुझसे अलग है और मैं मोटर चला रहा हूँ, उसी प्रकार शरीर में बैठे हुए यह बोध पल भर के लिये भी नष्ट नहीं होता कि यह तो वाहन है। ऐसी दशा है आत्मोपलब्धि की।

*　　　*　　　*　　　*　　　*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह न समझें कि आत्मदशा, जिसे आप कैवल्य, निर्वाण, साक्षित्व, सावधानता, चाहे जो नाम दें,—कोई भावना है। उस अवस्था का नाम ऐसा होना चाहिए जिसमें द्वैत का आभास भी न हो। किन्तु मानवीय भाषाओं में अद्वैत-सूचक शब्द नकारात्मक हैं। 'नहीं' की भाषा को छोड़कर 'है' की भाषा में बोलने जाएँ तो हमारा सारा का सारा भान ही द्वैतमूलक है।

* * * * *

बहुत विनम्रता के साथ यह कबूल करना चाहिये कि मैं अपने आप को जानता नहीं हूँ।

हमें अपने आप से परिचय नहीं है; अपने आप को क्या चाहिए यह देखकर तदनुसार जीने का साहस नहीं है, क्योंकि दूसरों की आंखों में हम अपने को तौलते रहते हैं। और जो हमेशा दूसरे के साथ तुलना करके अपने को देखता है, वह स्पर्धा और संघर्ष से कभी बच नहीं सकता।

* * ० * *

आत्मविलोपन का एक आनन्द होता है। नशे से भी आत्मविलोपन हो सकता है। लेकिन उसमें आपका विकास नहीं है। जप जैसी यान्त्रिक क्रिया से या संगीत से आत्मविलोपन कुछ देर के लिए हो सकता है। अहंकार की कैद से कुछ देर के लिए बाहर निकलने के रास्ते हैं। लेकिन अपने को भूलने से अहंकार का निराकरण नहीं होता।

* * * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चेतना की जो अवस्था ('ध्यान' या और कुछ) इन्द्रियगत व्यवहार तक आकर प्रकट नहीं हो सकती, वह आत्म-सम्मोहन मात्र है।

* * * * *

जैसे प्रेम किया नहीं जाता, हो जाता है, वैसे ही आत्मसाक्षात्कार समस्त चेतना का, व्यक्तित्व का विकास या उत्थान है एक स्तर से दूसरे स्तर पर । उस अवस्था में हुआ जाता है, आत्मसाक्षात्कार किया नहीं जाता ।

* * * * *

इस तथ्य को ग्रहण करना चाहिये कि आत्मसाक्षात्कार तन, मन, वाणी से परे का सर्वथा अज्ञात प्रदेश है। आत्मा चर्मचक्षु से दिखने की चीज़ नहीं और मन की कल्पना के बाहुओं में, आलिंगन में आनेवाली भी नहीं। आत्मसाक्षात्कार की कोई कल्पना करके साधक चलेगा ?

उस अवस्था की कल्पना करनेवालों ने ही चेतना-विस्तारक 'ड्रग' (औषध) बनाये हैं। उन्होंने यह मान लिया है कि देहभाव खो जाने पर और अहंकार से घड़ी भर छुट्टी मिलने पर जो अवस्था आती है, वह आध्यात्मिक अवस्था है। इस देश में भी अध्यात्म के नाम पर भाँग, धतूरा और गांजा का नशा लेने वाले कोई कम नहीं है। नशा इन पदार्थों का हो या उस अवस्था के वर्णन-परक शब्दों का हो, कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। किसी का भी आत्मसाक्षात्कार से कोई संबन्ध नहीं।

* * * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साक्षात्कारी व्यक्ति किसी के जीवन पर अपने जीवन की छाया नहीं पड़ने देते। उत्कटता की अग्नि में जलने वालों के दरवाजे पर पहुँच कर वे, कहीं काम अटका हो तो आगे के एक कदम का रास्ता बताकर हट जाएँगे।

* * * * *

आत्मसाक्षात्कार में रहस्यात्मकता कुछ भी नहीं है।

आनन्द

स्वयंचालित ऊर्जा की सहज गति का नाम आनन्द है। जीवन का प्रयोजन सुख नहीं, ज्ञान नहीं, कर्म नहीं, भक्ति नहीं; जीवन का प्रयोजन आनन्द की दशा है। वास्तव में आनन्द ही जीवन है, वह जीवन का प्रयोजन नहीं।

जीवन का प्रयोजन है संतुलन, चिन्मय समतुला। आनन्द वह चिन्मय संतुलन है जिसमें सूक्ष्म से भी सूक्ष्म उत्तजना नहीं है। इसलिये आनन्द ही जीवन का प्रयोजन है।

आनन्द आत्मा की सहजावस्था है। आनन्द का अभाव मृत्यु है और उस की उपलब्धि जीवन।

जब द्रष्टा, दृश्य, दर्शन नहीं रह जाते तब शेष रहता है आनन्द।

आनन्द तो चित्त की निर्द्वन्द्व अवस्था में होने वाला सहज स्पन्दन है, जिसका कर्ता कोई नहीं, भोक्ता भी कोई नहीं।

आनन्द कोई सागर का ज्वार-भाटा नहीं है। ऐसा आनन्द भी किस काम का जो अपनी लहर से आएगा और अपनी मौज से चला ज़ाएगा?

* * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आनन्द आत्मा की सहजावस्था है। एक ऐसी अवस्था है, जिसमें अधिष्ठित होने के बाद वहाँ से आपको कोई डिगा नहीं सकता, हटा नहीं सकता :

आनन्द के अधिष्ठान पर जो प्रतिष्ठित हो गया है, वह मान-अपमान, सुख-दुःख, हर्ष-शोक के बीच में से बादशाह की शान से गुजरता हुआ चला जाता है। वाणी उसका मौन तोड़ने में असमर्थ है और स्पूतनिक की गति भी उसकी स्थिति की अचलता को भंग नहीं कर सकती।

आनन्द के अधिष्ठान में प्रतिष्ठित होने के बाद कल क्या होगा, यह चिन्ता ही नष्ट हो जाती है। आने वाला कल और बीता हुआ कल निकल जाता है और वर्तमान के आलिंगन में व्यक्ति प्रेम से जीता चला जाता है।

आनन्द ऐसी अवस्था है जिस में प्रतिष्ठित होने के बाद, सामने आई परिस्थितियों के प्रति स्वीकार की या त्याग की भावना नहीं रहती। जो सामने आया है, उस के साथ जीते चले जाते हैं।

आनन्द में प्रतिष्ठित व्यक्ति मन का उपयोग उतना ही करता है जितना कि आप वाहन का। मन और बुद्धि पर आरूढ़ हो कर वह सभी आवश्यक काम करता है। किन्तु कुछ प्राप्त करने के लिये नहीं। क्योंकि सभी प्राप्तियों का जो प्राप्तव्य है, वह आनन्द पहले से ही भीतर उपस्थित है। उसे महत्त्वाकांक्षा की बीमारी छूती नहीं।

*　　*　　*　　*

आनन्द वह अवस्था है जो सापेक्ष नहीं, निरपेक्ष है। मन पर, तन पर, इन्द्रियों पर, बाह्य परिस्थितियों पर, अनुकूलता-प्रतिकूलता किसी पर निर्भर नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आनन्द में उत्तेजना नहीं है, आना-जाना नहीं है, बढ़ना-घटना नहीं है। वह ऐसी ज्योति नहीं है जिस में बाहर से तेल डालना पड़े। वह स्वयं ज्योति भी है, तेल भी है और बत्ती भी है।

इन्द्रिय-विषय-सम्बन्ध में से जो उत्तेजना पैदा होती है, उस के संवेदन को सुख कहा जाता है। हर उत्तेजना अपनी छाया में अवसाद लेकर आती है। उत्तेजना आरम्भ है और अवसाद उसका अन्त। संवेदन का आरम्भ सुख है, अन्त दुःख है। एक रेखा के दो छोर हैं। आनन्द से इनका कोई सम्बन्ध नहीं।

* * * *

व्यक्तियों, वस्तुओं, परिस्थितियों को अपनी पसन्दगी से चुनना और अपनी चुनी हुई परिस्थितियों में आनन्द मानना, यह आनन्द नहीं है। यह तो अहंकार द्वारा अपनी सुरक्षा के लिये खड़ी की हुई दीवारें हैं।

जाने अनजाने मनुष्य आनन्द की ही खोज करता है। रास्ते में सुख मिल गया तो उस में फँस गए और दुःख दिखा तो डर के भाग गये। इस प्रकार आनन्द तक पहुँच नहीं सकते।

आनन्द की कोई उपयोगिता नहीं कही जा सकती। कमल का सौरभ हवा में विखर गया, इसकी क्या उपयोगिता है?

* * * *

आनन्द की उपलब्धि मानव-मात्र का जन्मसिद्ध अधिकार है।

आसक्ति-विरक्ति

निषेध भी सूक्ष्म आसक्ति का रूप है। एक ही विकार भावरूप हो जाए तो आसक्ति कहलाता है और वही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निषेधात्मक भाषा में उतर आए तो विरक्ति बन जाता है। आग्रह और निषेध, अनुरक्ति और विरक्ति—ये दिखने में दो वृत्तियाँ हैं, लेकिन वास्तव में एक ही है।

आहार

धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र को क्या यह बताना पड़ेगा कि हमारा आहार क्या हो? उसे भी श्रेणीबद्ध, स्तरबद्ध, करना पड़ेगा ? कहीं भी मनुष्य स्वतन्त्र न रहने पाए ?

व्यक्ति को अपने शरीर के अनुकूल आहार खोज लेना चाहिए। आहार या विहार के लिये सार्वभौम, सर्वसामान्य विधान करना, उनके सिद्धान्त बनाना और उन पर नैतिक मूल्य लादना—यह अधर्म है। यह प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्रता का विषय है।

उत्तेजना

अनुकूल संवेदन को आप सुख कहते हैं और प्रतिकूल संवेदन को दुःख। सुख और दुःख दोनों में से जो उत्तेजना मिलती है, वह है आपकी खुराक।

उत्तेजना के उपासक हैं आप। यह नहीं देखते कि उत्तेजना में क्या घटित होता है।

उधार

जीवन में दो चीजें उधार नहीं ली जा सकतीं—एक जिज्ञासा और दूसरी अनुभूति। जिज्ञासा उधार लें तो उसमें गतिशीलता नहीं रहती और अनुभूतियाँ उधार लें तो उनसे तुष्टि-पुष्टि नहीं मिलती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपाधि

जहाँ चित्त को वृत्ति धारण करनी पड़ती है, वह उपाधि है। प्रवृत्ति-निवृत्ति, भोग-योग, गार्हस्थ्य-संन्यास—सभी उपाधि हैं। क्योंकि वहाँ धारण करने वाला चित्त शेष है, धारण करने का कर्म शेष है।

ऊर्जा

जैसे एक सृष्टि के अनन्त रूपों और आकारों की जड़ में ऊर्जा का ऊर्ध्व-मुखी स्पन्दन है, वैसे ही मनुष्य के भीतर भी ऊर्जा पड़ी है जो अपनी समग्रता में व्यक्त होने के लिये छटपटाती है।

एकता

एकता कोई यन्त्रवत् समानता नहीं है। वह तो जीवन की अखण्डता और अविभाज्यता है।

एकता ही जीवन का सत्य है। इस एकता में निषेध के लिये, खण्डन के लिए कहीं अवकाश नहीं है। निषेध न तन का होगा, न मन का, न गुणों का, न दोषों का, न विकार का, न विचार का। खण्डन और निषेध में सर्जन की शक्ति नहीं।

आग्रह और निषेध एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एकता में इन दोनों से चित्त मुक्त हो जाता है।

एकता आत्मीयता के द्वारा प्रकट होती है। निषेध और स्वीकार—इन दोनों से नितान्त भिन्न एक भूमिका हो सकती है। अपने जीवन को सरल रखना और यह समझना कि दूसरे व्यक्ति को भी पूरी स्वाधीनता है जीवन को सरल ही रखने की, यह है एकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम तो एकता के नाम पर दूसरे को अपनी प्रतिलिपि बनाना चाहते हैं। अपने अनुभवों का प्रामाण्य दूसरों पर लादना चाहते हैं। यह एकता नहीं है।

*   *   *   *   *

जीवन की एकता को पहचान कर जीने वाला व्यक्ति सुख-दुःख, मान-अपमान, प्रिय-अप्रिय के द्वन्द्वों को नहीं देखता; वह तो द्वन्द्वों के बीच में से बहने वाली जीवन-धारा में बादशाह की शान से चलता है।

*   *   *   *   *

जीवन की एकता को जीना मानव का धर्म है। विज्ञान मानव को बाह्य एकता में तो घसीट कर ले जा ही रहा है।

एकता में जाना मनुष्य सीख ले तो फिर विज्ञान अज्ञान के हाथ में नहीं जाएगा, आत्मबोध के हाथ में जाएगा।

कर्म-क्रिया

आप कर्म नहीं करते, क्रियारत हैं। इन्द्रियों की गुलामी में जो कुछ होता है, वह क्रिया है। अध्यात्म में क्रियासक्त जीवन नहीं रहता।

क्रिया अहंकेन्द्रित होती है और आत्मा में से जो जन्म लेता है वह संपूर्ण कर्म है।

मन और बुद्धि में क्रिया-प्रतिक्रिया ही संभव है, स्वायत्त कर्म नहीं। कर्म का जन्म समग्रता में से होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रिया में अंश का स्पन्दन है और कर्म में समग्रता स्पन्दित होती है।

क्रिया-मात्र खण्डित हैं। मन एक चाहता है, तो बुद्धि दूसरा चाहती है। मन तो रणक्षेत्र है। इसमें परस्पर-विरोधी वासनाओं, आकांक्षाओं का युद्ध चलता रहता है। क्रिया समग्रता में से नहीं उठती है। समग्रता में से कर्म का पुष्प तब खिलता है जब इन्द्रियों की और मन की गुलामी समाप्त होती है। आत्मदशा में ही कर्म संभव है।

काल

जो अनन्त है, शाश्वत है—उसे आप अपनी बुद्धि की कैंची से कतरते हैं। समय को काट-काट कर आप ने सामुदायिक सम्बन्धों की व्ययस्था के लिये दिन बनाये, घंटे बनाये। नहीं तो इस भौतिक काल-गणना में कोई सत्यता नहीं। एक प्रतीक भर है, और कुछ नहीं।

क्रान्ति

एक अत्यन्त दिव्य असन्तोष का तूफ़ान और आँधी आज सारे संसार के मानव की चेतना पर टकरा रहा है।

यह बड़ी गंभीर वेला है जब कि या तो संसार में विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय होगा और या मानव का सर्वनाश होगा।

यह ऐसा क्रान्ति का अवसर है जब कि एक ओर पश्चिम का विज्ञान-यन्त्र-उद्योग और बहिर्मुखी प्रतिभा और दूसरी ओर भारत की प्रज्ञा-प्रतिभा के समन्वय से एक संस्कृति का उद्भव होने का समय उपस्थित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाह्य जगत् का निषेध किये बिना और उसमें अटके बिना मानव अब अन्तर्जगत् की खोज में निकल पड़ा है। आन्तरिक सुख और सन्तुलन के बिना अब मानव चैन नहीं लेगा।

*　　*　　*　　*

आज भारत ही नहीं, सारे एशिया की भूखी नंगी जनता के सामने एक अवसर है कि जिस जीवन-पद्धति में से पश्चिम में हिंसा का ताण्डव उठा, उससे अलग किसी जीवन-पद्धति का निर्माण करें, जिसमें अध्यात्म के अधिष्ठान पर कुछ नया सर्जन हो।

*　　*　　*　　*

आज जरूरत है समग्रता में क्रान्ति यानी समग्र क्रान्ति की। अध्यात्म के नाम पर संसार से अलग हटकर, जीवन से विमुख होकर तथा-कथित एकान्त में जाकर बैठने वाले लोगों की उपलब्धियाँ और समाज की रचना के खिलाफ विद्रोह करके उसमें परिवर्तन करने वालों की उपलब्धियाँ—दोनों एकांगी रह गई हैं।

मस्तिष्क में विचारों का, अनुभूतियों का सुन्दर संग्रह जुट सकता है। लेकिन उससे काम नहीं चलेगा। जरूरत है क्रान्ति की, जीवन की एकता में जीने वालों की।

अपने भीतर जो परिवर्तन आता है, उसके अनुसार जीने का हिम्मत करने वाले मुट्ठी भर भी निकलें तो हो सकता है कि वह क्रान्ति मानव को कहीं ले जाए।

प्रकृति और आशय से मानव बनने के लिए आन्तरिक क्रान्ति की आवश्यकता है और उसी को मैं कहती हूं समग्रता की क्रान्ति।

*　　*　　*　　*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बौद्धिक स्तर पर विद्रोह करने से क्रान्ति नहीं होगी। लेकिन जिस मन में ईर्ष्या, द्वेष, संग्रह, अभिलाषा, स्पर्धा आदि के संस्कार पड़े हैं, उस मन से ही मनुष्य यदि मुक्त हो जाए तो काम बने।

चेतना में क्रान्ति होनी चाहिए। मानवीय संबन्धों के बदलने से ही समाज की व्यवस्था बदलती है! समाज-व्यवस्था के प्रति विद्रोह तो क्रान्ति नहीं है, क्योंकि उससे न चेतना का रंग बदलता है, न चित्त की भूमिका बदलती है।

क्रान्तिकारी यदि समाज से भाग जाएगा तो पलायनवाद होगा। उससे भी कुछ नहीं होगा। सत्ता का हस्तान्तर करने वाले भी कहीं नहीं पहुँचेंगे।

* * * *

यदि समझ में आ गया है कि अर्थनीति और राजनीति स्पर्धात्मक है और स्पर्धा से संघर्ष और संघर्ष से हिंसा अनिवार्य है, तो उस सोपान पर से उतर जाना, उस मूल्यांकन के दुष्ट चक्र से हट जाना और जीना, यही क्रान्ति का प्रारम्भ है।

क्रान्ति के इस शुभ अवसर पर आप और हम क्या कर सकते हैं? यही कि अपने जीवन में सुखी हों, शान्त हों, संतुलित हों। यही सबसे बड़ा योगदान है।

* * * *

यद देखकर कुछ आशा बँधती है कि जड़ता या तन्द्रा में रा मानव कुछ उठ रहा है, करवट बदल रहा है। घने अन्धकार में भी प्रकाश की आशा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस क्रान्ति के अवसर पर उठने वाली आँधी और तूफान मानव के चिरन्तन स्वरूप—'सत्यं शिवं सुन्दरम्' को नष्ट नहीं कर सकेगा, ऐसा प्रत्यय है। इसलिये निराशा इस चेतना को छूती नहीं है।

* * * * *

असली मानव का जन्म लेना अभी बाकी है। अभी तो न सहजीवन है, न समाज है, न सभ्यता है, न संस्कृति है। अभी तक जितनी तथाकथित सभ्यताएँ, संस्कृतियाँ हैं, इनमें जो सदंश हैं, वही बचने वाला है और जितना अनावश्यक कूड़ा कचरा है, जितने ऊपर के छिलके हैं, सब छँट जाने वाले हैं।

पश्चिम की वैज्ञानिक प्रतिभा का सत्य रहेगा और पूरब की आन्तरिक खोज की प्रतिभा का सत्य रहेगा। और इन दोनों के समन्वय से नव मानव का जन्म होगा।

खण्डित दर्शन

समग्रता को भीतर-बाहर, जड़-चेतन में खण्डित, विभाजित कौन कर देता है? सवाल यह नहीं कि अखण्ड के दर्शन कैसे होंगे; सवाल तो यह है कि खण्डित दर्शन क्यों होते हैं।

गति

हमारा परिचय जीवन की गति से है ही नहीं। भावना के आवेगों से है, प्रयोजन और हेतु से है।

* * * * *

गति और अन्तर सापेक्ष हैं। देश-काल की भाषा में अन्तर का अर्थ कोई निरपेक्ष वस्तु नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गम्भीरता

गम्भीरता व्यक्तित्व में वह सन्तुलन भर देती है, जिसका सौरभ है सर्वांगीण स्वस्थता ।

गम्भीर व्यक्ति वह है जो चुनौतियों, आह्वानों और समस्याओं के सामने सन्तुलन नहीं खोता, तनाव और दबाव का शिकार नहीं होता ।

जीवन को समझने के लिए गम्भीरता अनिवार्य है; वह बड़ी दुर्लभ वस्तु है, लेकिन उसके बिना वस्तुस्थिति के यथातथ्य दर्शन नहीं हो पाते । किसी भी कठिनाई से चित्त में जो तनाव पैदा होता है, उससे सन्तुलन खो जाता है । फिर परिस्थिति का सम्यक् दर्शन नहीं हो पाता ।

गरीबी

द्विसत्तावाद और नियतिवाद से ही समाज में आर्थिक और सांस्कृतिक गरीबी पैदा हुई है । लगता है कि इसके मूल में वे लोग हैं जिन्होंने जीवन को दो सत्ताओं में बाँटने का अपराध किया और कहा कि यह परमार्थ या अध्यात्म है और यह भौतिक जीवन है, माया है, मिथ्या है; जिन्होंने यह कहा कि विधाता या नियति नाम की कोई सत्ता है, उसकी इच्छा से सब चलता है ।

* * * * *

गरीबी मिटाना असम्भव नहीं, पर उसके लिए अपेक्षित शोषणमुक्त समाज आज तक नहीं बन पाया है, क्योंकि शोषण की जड़ें बाहर ही खोजी गईं, भीतर नहीं । बाहर की शाखाओं की काट-छाँट भी आवश्यक तो है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर जड़ें मनुष्य के चित्त के भीतर हैं।

*　*　*　*　*

गरीबी मिटाने का दर्द अपने देश में किसी को नहीं है (अपवादरूप व्यक्तियों को छोड़ दीजिए)। यदि इसे मिटाने की कुछ योजनायें बनीं तो उन्हें कार्यान्वित करने के लिये जिन मनुष्यों को लाना पड़ा, उन्हें जनता की गरीबी मिटाने से अधिक चिन्ता अपनी अमीरी की रही।

गुरु

गुरु कोई व्यक्ति नहीं है, वह तो व्यक्तित्व की एक अवस्था है।

जिसकी चेतना से अहन्ता का अन्धकार समूल नष्ट हुआ है, जिसकी चेतना समग्रता में प्रतिष्ठित हो गई है, जिसकी वाणी और व्यवहार में तटस्थता का सौरभ है, जिसका जीवन प्रेममय बन गया है, ऐसे व्यक्ति को आप गुरु-पद में पहुँचा हुआ कहेंगे। लेकिन उस अवस्था का तादात्म्य आप उस व्यक्ति के शरीर के साथ मत कीजिए।

हाड़-मांस को गुरु नहीं कहा है। वह तो पात्र है उस अवस्था को धारण करने वाला। सत्य को किसी हाड़-मांस में सीमित नहीं किया जा सकता।

*　*　*　*　*

जो व्यक्ति संयोग से गुरुपद या अवस्था में प्रतिष्ठित हो गया है, उसके लिए उच्च पद की कल्पना में से प्रभुत्ववाद का जन्म होता है। इसमें बाँधने वाली चीज क्या है? उस व्यक्ति के शरीर के प्रति, विचारों के प्रति आसक्ति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुगन्ध ही पुष्प की वाणी हैं, प्रकाश दीपक की वाणी है, उसी प्रकार निरहंकारिता, विनम्रता और प्रेम—ये 'गुरु' पद में प्रतिष्ठित व्यक्ति की वाणी बन जाते हैं। उस बहती गंगा में जिसे छलाँग लगानी हो लगाते हैं, पा लेते हैं। वहाँ निमन्त्रण नहीं हो सकता। प्रयत्न-पूर्वक, हेतुपूर्वक देने का कर्म हो ही नहीं सकता।

* * * * *

'अध्यात्म में हमें कुछ करना नहीं पड़ता, गुरु दाता बनकर हमें कुछ देगा'—यह तो अपरिपक्वता की भाषा हुई। जो एक मनुष्य कर सकता है वह सभी कर सकते हैं। मनुष्य मात्र में वह शक्ति निहित है जो उसे सब बन्धनों से परे स्वयं ले जाती है।

* * * * *

मार्ग-दर्शन करने वाला व्यक्ति आपको मिल सकता है लेकिन वह आपके लिये रास्ता चल नहीं सकता। चलना तो आपको ही होगा। एक की अनुभूति दूसरे के काम की नहीं।

गुरु-पद में रहने वाले व्यक्ति के साथ जीवन भर रहने पर भी हाथ खाली रह जाते हैं। यह इसीलिए होता है कि हम प्रतिबिम्बों में फँस जाते हैं और बिम्ब की खोज नहीं करते।

जिज्ञासा की जागृति हो,—व्यक्ति अभिमुखता की सदेह मूर्ति बनता चला जाय तो जीवन स्वयमेव गुरु बनकर सिखाता चला जाता है।

* * * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस देश में गुरु की आवश्यकता, अनिवार्यता बताने वाला एक वर्ग है और उसका निषेध करने वाला दूसरा वर्ग खड़ा हो गया है। ये दोनों 'अति' के दो छोर हैं।

गुरु के प्रति मुझमें न निषेध है, न अनुकूलता। मैं आज के मानव के लिए उसे अनावश्यक मानती हूं। उसका निषेध करना या अनिवार्यता बताना—दोनों मेरे लिये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और दोनों अनावश्यक हैं।

चित्तशुद्धि

भ्रम-निराकरण ही चित्त की शुद्धता और निर्दोषता है।

चुनाव

अहंकार ने आपके इर्द-गिर्द पूरी जेल की दीवारें बना दी हैं। 'ऐसे व्यक्ति हों, ऐसी ही परिस्थिति हो, तब मैं संतुष्ट रहूंगा'—यह चुनाव है। यह जीवन जीना नहीं है, यह तो नदी की धारा में छोटा-सा तालाब बनाने की कोशिश है।

"जीवन-धारा की ताजगी और शीतलता तो चाहिए, लेकिन प्रवाह नहीं चाहिए"—यह है चुनाव।

* * * * *

मकान, वस्त्र, शब्द-प्रयोग, अंग-भंगी इत्यादि में झलकने वाला आप का चुनाव या पसन्दगी आपकी आन्तर अवस्था के वितान मात्र हैं। भीतर का प्रतिबिम्ब बाहर पड़ता ही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जड़-चेतन

जड़ और चेतन में सीमा-रेखा ढूँढने जाएँ तो कहीं मिलेगी नहीं। चेतन को छोड़ कर दूसरे किसी तत्त्व की, द्रव्य की सत्ता है ही नहीं।

चैतन्य पर स्पन्दनों का जो आवरण लिपटा हुआ है, उसे आप जड़ कहते हैं। कहीं वह आवरण स्थूल है और कहीं सूक्ष्म। इतना ही अन्तर है।

जन्म-मरण

जीवन का अखण्ड प्रवाह चल रहा है। जन्म और मरण उस में उठने वाले बुद्बुदे के समान हैं।

जिज्ञासा

आज हमारी जिज्ञासा भी अहंकार की चेष्टा है। विशुद्ध जिज्ञासा नहीं है। परीक्षक बन कर निष्कर्ष सुनने हम जाते हैं। भारतवर्ष में आध्यात्मिक परिभाषा का अतिपरिचय होने के कारण सब परीक्षक ही हैं, साधक कोई नहीं।

उद्वेग या असफलता में से उठने वाली जो इच्छा है कि जरा झाँक कर देखें और भी कहीं कुछ है या नहीं, यह जिज्ञासा नहीं है।

जिज्ञासा कोई बौद्धिक, भावनात्मक विलास नहीं है। वह यदि प्रतिक्रिया में से उठी हो या उधार ली गई हो तो साधना एक व्यर्थ का आयास हो जाता है।

ग्रन्थाधारित, पन्थाधारित प्रश्न जिज्ञासा नहीं है। बौद्धिक या भावनात्मक उत्तेजना या प्रतिक्रिया में से उठी हुई प्रश्नमालिका जिज्ञासा नहीं कहलाती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्यात्म-जिज्ञासा भी यदि बाजारू या ग्राम्य बनने लगे तो फिर हमारे दुःख का पार नहीं रहेगा।

जिज्ञासा और उसकी पूर्ति उधार नहीं ली जा सकती। सत्य की अनुभूतियों का आदन-प्रदान या खरीद-बिक्री भी नहीं हो सकती। यहाँ तो हरेक को अपने ही भीतर खोजते हुए अनुभूति तक पहुंचना है।

* * * *

स्वायत्त जिज्ञासा चाहिये। उधार ली हुई जिज्ञासा या अनुमान-जनित जिज्ञासा हमें साधक की भूमिका तक नहीं ले जाती। वह बौद्धिक जिज्ञासा की उलझन में, शब्दों के जाल में अटकाये रखती है।

मैं उसी जिज्ञासा को सही मानती हूँ जो अपने जीवन में से उठती है।

* * * *

स्वायत्त जिज्ञासा की अग्निशिखा का जन्म होने से पहले सावधान रहिये और सत्संग में मत जाइये। विद्रोह की वाणी सुनना भी अपने जीवन के साथ खेल खेलना है। या तो उस में से पाखण्ड जगेगा कि हम आध्यात्मिक हैं, और दूसरे जो सत्संग में नहीं जाते वे आध्यात्मिक नहीं हैं; या फिर यदि शब्दबाण लग गया तो आप के जीवन को उलट कर रख देगा।

जिज्ञासा की पूर्त्ति के लिये समय नहीं मिलता, इसी का अर्थ है कि सच्ची भूख नहीं है। भूख न हो तो फिर जीवन में असन्तोष पैदा करने वाले व्यक्तियों के पास जाना ही नहीं चाहिये।

* * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यावहारिक मान्यतायें, सुरक्षा की भावना, उसके लिए होने वाला पुरुषार्थ—यह सब और सत्य की जिज्ञासा का स्पर्श—इन दोनों में गुणात्मक भिन्नता रहेगी ही ।

* * * *

जीवन का प्रत्येक क्षण अपनी मुट्ठी में बाँध कर चिरन्तन सत्य का जो सन्देश लाता है, उसे खोल कर देखने की इच्छा जिज्ञासा है । दैनिक जीवन में हम आनन्द का सेवन नहीं कर पाते क्योंकि हम समझते हैं कि हमें तो सब मालूम है ।

चित्त की शून्यता में जिज्ञासा का जन्म होता है । विनम्रता के विना जिज्ञासा नहीं ।

ज्ञान-संग्रह का अहङ्कार आत्मजिज्ञासा को पैदा नहीं होने देता । "मैं अपने को जानता हूँ"—यह स्वपरिचय का भ्रम जब तक दूर नहीं होता तब तक जिज्ञासा का जन्म असम्भव है ।

जब तक अपनी अशक्ति की, तन्द्रा की पहचान न हो, तब तक जिज्ञासा हृदय में कैसे पैठेगी ?

* * * *

केवल जानने की इच्छा को जिज्ञासा नहीं कह सकते । वह तो अनन्त इच्छाओं में से, अनेक वासनाओं में से एक है ।

जिज्ञासा और कौतूहल बिल्कुल अलग चीजें हैं । कौतूहल ग्रन्थों की तरफ ले जायेगा, परम्परा और सम्प्रदायों में से उपाय ढूँढने में ही प्रवृत्त कर देगा, और जिज्ञासा है अपने जीवन में सत्य की खोज निरन्तर करते रहना ।

* * * *

उपभोग की आकांक्षा, मानसिक या बौद्धिक अनुरंजन की आकांक्षा एक वस्तु है और जिज्ञासा दूसरी वस्तु ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आध्यात्मिक जीवन की इच्छा रखने वाले बहुत हैं, लेकिन जिज्ञासा रखने वाले दुर्लभ हैं।

*　　*　　*　　*

जिज्ञासा एक जलती हुई ज्योति है। जीवन जीते-जीते जहाँ कठिनाई आती है, वहाँ फिर जिज्ञासा ठिठक कर सवाल खड़ा करती है।

जिज्ञासा की प्रसव-वेदना बड़ी भयानक होती है। वह एक दिव्य असन्तोष है कि जीवन का अर्थ मेरे सामने छिपा, है लेकिन मुझे मिलता नहीं।

जिज्ञासा एक शक्ति है, एक आग की चिनगारी है, जो जलने पर बुझती नहीं। संसार की कोई सत्ता उसे बुझा नहीं सकती।

जिज्ञासा का शूल एक ऐसा घाव पैदा करता है जो सत्य की उपलब्धि के बिना भर नहीं सकता।

अन्तर में सुलगी हुई जिज्ञासा के आलोक में सर्वांग अभिमुख हो जाता है, सत्ता का स्पर्श पाने के लिये आतुर हो उठता है।

जिज्ञासु होना, अभिमुख बनना कोई शब्दों का खेल नहीं है, कल्पना का विलास नहीं है। जिस व्यक्ति में जिज्ञासा का उदय होता है, उस का आन्तर कलेवर बदल जाता है।

जिज्ञासा का जल चेतना के सभी स्तरों में प्रवेश करता है, और उस से सर्वाङ्ग में अभिमुखता का सञ्चार होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मजिज्ञासा या अध्यात्म-जिज्ञासा एक ऐसी पवित्र अग्नि है जो सारे जीवन के आन्तर-वाह्य को जला देती है।

जिज्ञासा की अपनी गति होती है। वह आप को आगे ले चलती है। एक बार जिज्ञासा की ज्योति जल उठी तो फिर शतकानुशतकों के भले-बुरे सब संस्कार उसमें जल जायेंगे और उसी के आलोक में चेतना आगे बढ़ती चली जायेगी।

जिज्ञासा की अग्नि, प्रज्वलित होने पर जीवन में बड़ी धाँधली मचा देती है। फिर सीखने के लिये व्यक्ति प्रतिक्षण तैयार रहता है। भले-बुरे की, पाप-पुण्य की, नीति-अनीति की रेखायें धुल जाती हैं। जिज्ञासा की दुनिया बड़ी रूमानी है। बड़ी रोमहर्षक, वहुत मधुर, बहुत मनोहर।

* * * *

सत्य की, आत्मसाक्षात्कार की जिज्ञासा जब अग्नि बन कर आप के भीतर धधक उठेगी तब ऐसा दिव्य असन्तोष देगी कि आप को दुनिया का कोई भान नहीं रहेगा। ऐसी उत्कटता की चरम सीमा पर पहुँचने का बिन्दु ही विस्फोट का बिन्दु है।

सत्य की जिज्ञासा के जागते ही, मन ने; अहङ्कार ने आजतक सुरक्षा का जो किला बनाया है, उसकी दीवारें ढहने लगती हैं। फिर व्यक्ति समाज में तो रहेगा, लेकिन स्पर्धा-प्रतिस्पर्धा, क्रोध, द्वेष, तिरस्कार, संग्रह, संग्रह की सुरक्षा का प्रयास, राग-विराग—यह सब फिर नहीं चल पायेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्य की जिज्ञासा जीवन का एक नया आयाम है, एक नया परिमाण है। जिज्ञासा जागृत होने पर फिर व्यक्ति का जीवन यथापूर्व नहीं रह सकता। शतकानुशतक से आप ने अपना जो व्यक्तित्व बनाया है, उसे जिज्ञासा चूर-चूर कर देगी।

जिज्ञासा बड़ी दाहक और विस्फोटक वस्तु है। इस आग की दाहकता में से गुजर कर फिर जीने का साहस हो तो स्वरूप में प्रतिष्ठा होगी।

जिज्ञासा और अभिमुखता आप के चित्त में जागृत हो, आप उसके लिये चित्त में अवकाश दें तो बाकी काम जीवन स्वयं सँभाल लेगा।

जीवन

जीवन तो समग्र है, चिन्मय का व्यापार है। उसके आवरणों में विविधता है, लेकिन आवरणों में छिपी ऊर्जा झाँकती रहती है।

जीवन तो शुद्ध सत्ता है। आप की बुद्धि अनन्तता का जो विभाजन करती है, वह जीवन में नहीं है।

जिसे जीवन की समग्रता से प्रेम नहीं है, वह उसके किसी अंश को पकड़ लेगा। जिसे सुन्दरता से प्रेम है, लेकिन कुरूपता से घृणा है उसके जैसा अरसिक व्यक्ति नहीं। अपनी पसन्दगी की वस्तु, व्यक्ति, वातावरण खोजने वालों को जीवन से प्रेम नहीं है, वे जीवन का अनादर करते हैं।

हर क्षण का, हर कर्म का, हर विचार का समग्रता के साथ सन्बन्ध जीवन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आप तो ज्ञात की परिभाषाओं के अनुसार जीवन को श्रेणियों में काट-छाँट कर अपनी इच्छा के अनुसार जीवन का एक ढाँचा बनाना चाहते हैं। आप के हाथ में टुकड़े आ जाएँगे, काट-छाँट करने का जो हर्ष और उत्तेजना है, वह भी मिल जाएगी, लेकिन जीवन मुट्ठी में से निकल जाएगा।

विचारों, नियमों के सुई-धागे से जीवन के टुकड़ों को जोड़ने जाएंगे तो टुकड़े जुड़ जाएंगे, लेकिन जीवन निकल जाएगा।

जीवन में परिधि नहीं और केन्द्र भी नहीं। अहंकार का केन्द्र नहीं, अनुभूति की परिधि नहीं, केन्द्रहीन, परिधिहीन चेतना का अनन्त विस्तार है।

* * * *

जीवन ही प्रभु है। जीवन से बाहर कहीं प्रभु नहीं है।

जीवन की कृतार्थता जीवन में है, उससे बाहर उसका लक्ष्य क्या हो सकता है? जीवन का प्रयोजन, उद्देश्य, लक्ष्य लोग जीवन के बाहर क्यों ढूंढते हैं?

जीवन है रसगंगा। अणु-परमाणु तक रस का एक अक्षुण्ण प्रवाह है। जीने की कला इसी में है कि उस रस को पाया जाए जो जीवन में अनुस्यूत है। पल-पल में जो एक छन्द है, लय है, गति हैं, उसके साथ समरस, एकरस होकर जिया जाए।

* * * * *

जीवन एक कला है, एक संगीत है। लेकिन जीवन की जो वीणा हमें मिली हुई है, उसे मिलाने की परवाह किसे है?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन की गति ऊर्ध्व होती है। जिसमें प्राणशक्ति है, और प्राणों का संचालन करने वाली ऊर्जा है, उसकी गति ऊर्ध्व होती है।

मानव का जीवन भी ऊर्ध्वगति है। सत्य की ओर, अमृत की ओर जाने की जो प्रेरणा है, वह ऊर्ध्वगति जीवन की प्रेरणा है।

* * * * *

शारीरिक और मानसिक सुख-सुविधाओं का सामान जुटाते-जुटाते जिन्दगी निकल जाती है, जीने की फुर्सत ही नहीं है।

तन-मन को ढोये जाना जीवन नहीं है। प्रभात का आनन्द नहीं, रात्रि का विश्राम नहीं; इसे जीवन कहना भ्रान्ति है।

* * * * *

यान्त्रिक क्रियाओं को सुबह से शाम तक करते रहना, मृत्यु की प्रतीक्षा करते रहना कोई जीवन नहीं है।

शरीर को घसीटते चलना जीवन नहीं है। वह शवयात्रा है, शिवयात्रा नहीं।

आज जीवन दरिद्र है, रिक्त है। मानव व्यक्तिशः जीवन की समृद्धि और ऐश्वर्य भीतर पैदा नहीं करेगा तो परस्पर मानवीय सम्बन्धों में प्रेम, समता, बन्धुत्व का ऐश्वर्य कहीं बाहर से उँडेला जाएगा ?

जीवन में मामूली कुछ नहीं है। सभी का समान महत्त्व है, कोई क्षण छोटा नहीं ,कोई बड़ा नहीं।

* * * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन जीने के लिये पहला पुरुषार्थ है सुबह से रात तक के अपने व्यवहारों को देखना। पुस्तकों में लिखे विचारों को लेकर नहीं, दूसरों के अनुभवों को उधार लेकर नहीं, खुद देखने का पुरुषार्थ करना है।

मनुष्य हर चीज को देखने लगे, हर सम्बन्ध को निरखने लगे—आँख खोल कर, तो जन्म-मरण, सुख-दुःख आदि सभी द्वन्द्वों के बीच में, दो तटों में से होकर गुजरती हुई नदी के समान बहती जीवन-धारा का स्पर्श हुए बिना नहीं रहेगा।

* * * * *

आंसू बहाने में जीवन है तो मुसकान बिखेरने में भी। सुख की गुदगुदियों में जीवन है तो दुःख की व्यथा में भी है। मिलन में यदि जीवन की मुसकान है तो विरह में भी जीवन का स्पन्दन है।

* * * * *

दूसरों के कहने पर जो किया जाता है, उसमें निजी अन्वेषण नहीं होता और जीवन वह जीता है जो पल-पल में खुद खोजता है और पाता है। देखना ही पाना हो जाता है।

जीवन बनाया नहीं जाता, जिया जाता है और जीने का मतलब है अपने जीवन में अपने सर्वांग के तथ्य को पाना।

किसी एक की व्याख्या के अनुसार कोई दूसरा जी नहीं सकता। जितनी जिसकी उपलब्धि है, उतना ही उसका जीवन है। अपनी उपलब्धि में ही जिया जा सकता है, दूसरे की उपलब्धि में नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उधार लेकर कभी जिया नहीं जा सकता। ऋषि-मुनियों की व्याख्याएँ चेतना में अलंकार के रूप से धारण की जा सकती हैं, लेकिन जीवन कोई अलंकार नहीं है जो धारण किया जाए। वह तो जीने की वस्तु है।

* * * * *

ज्ञान और अनुभूति की वेड़ियाँ पहन कर मन की कैद में रहने वाले जी नहीं पाते हैं। उन्मुक्त मानवों का विहार है जीवन। इसीलिये उसे लीला कहा गया हे।

धर्म और अध्यात्म ही नहीं, जीना भी वीरों का काम है। कायर जी नहीं पाता। उन्मुक्तता में ही जीवन की खुशबू है।

सब समय हम जीवन-सागर पर हैं। लहरों के थपेड़े आएंगे, लगेंगे, उन्हें देखेंगे, और झेलेंगे। यहाँ बचना नहीं, जीना है। यह किनारे पर बैठने वालों का काम नहीं है। यह तो छलाँग लगा कर तैरने वालों का काम हैं।

जिन्दगी हिसाब-नवीसों का काम नहीं, पल-पल में खतरा उठाने वालों का काम है, समग्रता की बाजी लगाकर आगे बढ़ने वालों का काम है।

* * * * *

शरीर में होना (जन्म), शरीर में न होना (मृत्यु)—ये तरंगें भी किसी सत्ता के आधार पर उठती हैं, इसका जिस दिन बोध होगा, उस दिन जीवन-यात्रा प्रारम्भ होगी।

जीवन स्वयं एक काव्य है, उसके यथातथ्य वर्णन में ही शायद महाकाव्यों का जन्म होता होगा।

* * * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन करने में नहीं, होने में है। करने में अहंकार की पुष्टि है, होने में समग्रता का स्वावलम्बन है।

जीवन है सहज, स्वयम्भू गति जो बाधित नहीं हो सकती, खण्डित नहीं हो सकती। विचार और भावना के आवेगों के वश में होकर क्रिया करना जीवन की गति नहीं है।

जीवन सहज है, जीवन सरल है। प्रयास में जीवन नहीं, क्योंकि प्रयास जटिलता लाता है।

जो हैं नहीं, वह दिखाने की, जो नहीं हैं वह बनने की कोशिश में जिन्दगी की सारी शक्ति लगा देंगे तो दम्भ, पाखण्ड या असन्तोष के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।

* * * * *

दैनिक जीवन ही जीवन की वास्तविकता है। इसे छोड़कर और कहीं दूसरा जीवन नहीं है।

जिसे आप जीवन कहते हैं वह तन और मन से परे कहीं होगा। उसकी गति के स्रोत में प्रतिष्ठित होने के बाद तन-मन-रूपी यन्त्रों का आप उपयोग करेंगे।

अभिमुखता जीवन है, विमुखता मृत्यु है।

आपकी जिज्ञासा जन्म और मृत्यु की ओर जाती है, जीवन की ओर नहीं।

* * * *

जो क्षण गया वह वापस नहीं आता। यही तो जीवन की अनोखी और अद्भुत लीला है।

जीवन में कभी पुनरावृत्ति नहीं होती। प्रतिक्षण नवीनता है। उसकी नित्यनूतनता में ही उसका सौन्दर्य छिपा हुआ है। यह बात जो जानेगा वह फिर अपनी सुरक्षा और बचाव की तैयारी नहीं करेगा।

* * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन में निषेध के लिये अवकाश ही नहीं है। किसी वस्तु से विमुख होने की गुंजाइश जीवन में है ही नहीं।

जीवन से संग्राम की तैयारी अध्यात्म में सबसे बड़ी बाधा है। जीवन संग्राम करने की वस्तु नहीं, संघर्ष करने का तत्त्व नहीं है। जीवन तो समझने का, आनन्द लूटने और लुटाने का एक पवित्र अवसर है।

जीवन तो अभी है, यहाँ है। यदि वह अभी नहीं, यहाँ नहीं, तो कहीं नहीं, कभी नहीं।

जीवन है तो वर्तमान में है, इस क्षण में है। इस क्षण से, किसी भी कारण सम्बन्ध छूटे तो हम जीवन से वंचित रह जाएँगे। जो क्षण सामने है, उसमें समग्रता से जियें।

जिसे 'आज' 'अभी' 'यह क्षण' कहा जाता है, उसे छोड़ कर कहीं चिरन्तनता का निवास नहीं है। अनन्त, शाश्वत कोई क्षणिक के विरोध में नहीं खड़ा है। अनन्तता सान्त के खिलाफ नहीं खड़ी है। जन्म के दूसरी तरफ मृत्यु है, लेकिन जीवन के विरोध में कोई तत्त्व नहीं खड़ा है। जीवन निर्द्वन्द्व है। वर्तमान क्षण में ही अनन्तता का इत्र भरा है। चैतन्य की पहिचान जिसे मिट्टी के कण में नहीं होती उसे सौ फीट की मूर्ति में भी नहीं होगी।

जीवन में द्वैत भी नहीं, अद्वैत भी नहीं, एकता भी नहीं, अनेकता भी नहीं। आज नहीं, बीता हुआ कल नहीं, आने वाला कल भी नहीं। सूर्योदय और सूर्यास्त तो आपकी नजर से होते हैं। सूर्य के पास न उदय है, न अस्त। सूर्य तो न दिन जानता है न रात।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन-विभाजन

जीवन तो एक ही है; उसमें अन्दर कहाँ और बाहर कहाँ ? उसमें एक कहाँ और अनेक कहाँ ? ये भेद तो हमने पैदा किये हैं।

जीवन एक, अखण्ड, अविभाज्य है। उसे काटा नहीं जा सकता, बाँटा नहीं जा सकता, छाँटा नहीं जा सकता। उसे खण्डित करना ही पाप है, बन्धन है और उसकी समग्रता में उसे देखना यही मुक्ति है, मोक्ष है।

जीवन को हम भौतिक और आध्यात्मिक—यों विभाजित कर देते हैं और फिर दोनों खण्डों में प्रतिष्ठा प्राप्त करने की कोशिश करते हैं।

जीवन में सार्वजनिक और निजी ऐसा कोई विभाजन है ? व्यष्टि और समष्टि कोई अलग है ? किस अभिशाप से मनुष्य ने जीवन को खण्डित कर दिया ?

सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन ये शब्द हमारे वाक्य प्रचार में से हट जाने चाहिए। यह विष है। इसने दृष्टि को विषाक्त किया है। अनर्थ—परम्परा पैदा की है। इस अनेक-सत्तावाद से भारतीय जीवन की बड़ी दुर्दशा हुई है।

जीवन का विभाजन बड़ा अवैज्ञानिक है। मानव जीवन के टुकड़े करता चला। भिन्न२ मूल्यों का ढेर लगा लिया। व्यक्तिगत-सार्वजनिक, आर्थिक-आध्यात्मिक, राजनैतिक-मानवीय मूल्यों में किसी का किसी से संबंध नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूल्यों की जितनी विभिन्नता, विविधता, विसंगतियाँ उतने ही तनाव। फिर मानव सबको सन्तुलित करता चलता है, सरकस में तार पर चलने की तरह। इन विसंगतियों को सँभालते हुए ही आयु बीत जाती है, जीने की फुर्सत ही नहीं मिल पाती।

आप जिसे निजी जीवन कहते हैं, उसमें कोई गोपनीयता है ही नहीं। जीवन के सामने हम सदैव अनावृत हैं।

जैसे कपड़े के टुकड़ों की गुदड़ी बनाते हैं, वैसे ही आप व्यक्तित्व के खण्डित अंशों को बटोर कर जीना चाहते हैं। जीवन की सुन्दरता, एकता सब नष्ट हो जाती है।

यदि उपासना आपके जीवन में ओतप्रोत नहीं होगी तो आप के भीतर दो व्यक्ति जिएँगे—एक प्रार्थना-मन्दिर में जाकर विनम्र होने वाला और दूसरा वहाँ से बाहर क्रोधमय, विकारमय।

वर्तमान को छोड़ कर बाहर कहीं परमात्मा मुझे मालूम नहीं। आप जिसे भौतिक कहते हैं, उसके अतिरिक्त किसी 'चिन्मय' का मुझे पता नहीं। कण भर लेकर धरती मन भर लौटाती है; खेती क्या भौतिक कर्म है? एक मुट्ठी अन्न, खाया जाने पर विविध संजीवन रस बनता है; भोजन क्या भौतिक है?

तटस्थता

अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं के प्रति तटस्थता बहुत बड़ी ताकत है। तटस्थता तो जीवन की सहजता, समता, ऋजुता है। उसे मध्यस्थता कह सकते हैं। उदासीनता (उत् + आसीनता = ऊपर उठ जाना) भी कह सकते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'हमें तो विकार पर सवार होकर चलने की आदत है। तटस्थता में विचारों, विकारों का कोई आधार नहीं। इसलिए उस निरालम्ब अवस्था में रहना हमें कठिन लगता है। उससे भारी थकान लगती है।

राग और विराग—इन दोनों के बीच वैज्ञानिक तटस्थता का जो मध्यस्थ बिन्दु है, वह साधना का प्रारम्भ है।

तन-मन का परिचय

तन और मन जो हमारे चिरपरिचित होने चाहियें, उनसे हम सर्वथा अपरिचित हैं।

सत्य का परिचय पाने के लिये शुरुआत अपने शरीर से करें। शरीर ही सबसे अपने निकट है। साधना और आत्मज्ञान का आरम्भ है शरीर के परिचय से।

भोगासक्त और अनासक्त दोनों ही शरीर का अपमान करते हैं।

साधना का प्रारम्भ शरीर की निरामयता से, निर्मलता से, सौष्ठव से है, यह चीज़ भारतवर्ष भूल गया है।

हमारे मन में शरीर के प्रति अनुराग है, लेकिन अध्यात्म के नाम पर इससे विराग रखना चाहते हैं। इस अन्तर्विरोध के बीच से संघर्ष और उसमें से पाखण्ड का जन्म इस देश में हुआ है।

शरीर एक बहुत सुन्दर यन्त्र है, तन्तुवाद्य से भी सूक्ष्म, लेकिन हमें उसका परिचय कहाँ है ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्म-अध्यात्म

नीतिशास्त्र और धर्मशास्त्र के अनुसार अपनी स्वतन्त्रता को कुछ मर्यादित करके दूसरे लोगों की स्वतन्त्रता का संरक्षण करते हुए मनुष्य जीता है। सामाजिक जीवन में आप अपने अधिकार, अपना स्वातन्त्र्य स्वेच्छा से छोड़ते हैं, कुछ मर्यादाओं को स्वीकार करते हैं। वैसे ही धर्म में करना होता है।

जहाँ एक से अधिक व्यक्ति रहते है वहाँ धर्म और नीति का निर्माण हो जाता है। अकेले व्यक्ति के लिये धर्म और नीति का कोई अर्थ ही नहीं। किन्तु सामाजिक या व्यक्तिगत धर्म को आध्यात्मिक जिज्ञासा न समझें।

शारीरिक और मानसिक आवश्यकता की वैज्ञानिक, सुसंस्कृत रीति से पूर्ति करना धर्म तो है, लेकिन यह जीवन का प्रयोजन नहीं है।

शरीर में, मन-बुद्धि में जो शक्तियाँ हैं, उनका समग्रता में विकास उपलब्ध करना मानव का धर्म है। लेकिन उसका अध्यात्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म और अध्यात्म नितान्त भिन्न हैं।

अपने धर्म-शास्त्र के अनुसार आचरण करने वाला व्यक्ति. नैतिक, सदाचारी, कर्तव्यशील व्यक्ति आध्यात्मिक अनुभूति-सम्पन्न हो यह जरूरी नहीं है। अध्यात्म जीवन का एक नितान्त भिन्न आयाम है, परिमाण है।

* * * *

परस्पर व्यवहार के लिये जो सर्वसम्मत नियम बनाये गये हैं, उनके अनुसार आचरण करने वाले अध्यात्म-जीवन तक नहीं पहुँच पाते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्म में मन की क्रिया सम्यक् करनी होती है, और अध्यात्म में समस्त मानसिक क्रियाओं को शान्त होने देना पड़ता है।

धर्माचरण में शास्त्र अथवा व्यक्ति को प्रमाण मानकर चलना होता है। इसका सत्य की खोज से कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु अध्यात्म तो है सत्य की व्यक्तिगत खोज और अनुभूति। केवल सत्य की खोज लेकर, शास्त्र और व्यक्ति को प्रमाण माने विना धर्म में प्रवेश करने वाले को समाज कभी धर्मशील नहीं मानेगा।

ध्यान

ध्यान कोई कर्म या क्रिया नहीं है। वह तो जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण है, एक अवस्था है दर्शन की।

ध्यान तो समग्र व्यक्तित्व की अवस्था है, लेकिन ध्यानावस्था में जाने के लिये मन की तटस्थता को सीखा जा सकता है।

ध्यान तो समग्र व्यक्तित्व का विकास, परिपाक है ठीक उसी प्रकार जैसे शरीर और मन का कुमार अवस्था से यौवन में एक साथ उत्थान होता है। यौवन को कहीं से लाया नहीं जा सकता।

ध्यान ऐसी दशा है, जिसमे प्रवेश होने के बाद निवृत्ति नहीं है। जैसे, जो बालक था वह युवावस्था में आ गया, अब वह बालावस्था में वापिस नहीं जा सकता। युवावस्था से कोई निवृत्ति है ?

मन के मौन में चेतना का जो आयाम जागृत हो जाता है, उसका शील या स्वभाव है निस्तरंग, निष्कम्प, निःस्पन्द अवस्था जिसमें कोई व्यग्रता नहीं, व्यस्तता नहीं। अतः ध्यान समग्रता की अवस्था है, मानसिक कर्म नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन के शान्त होने में जो घटित और प्रस्फुटित होगा, वही ध्यान है, यदि आप प्रस्फुटित होने दें तो। मन के मौन को भी बुद्धि के उपभोग का विषय बना लिया तो अटक जायेंगे।

समग्रता में खिलनेवाली सहज-सावधानता की अवस्था है ध्यान। वह ऐसा अवधान है, जिसका कोई अविषय नहीं, जो केन्द्रित नहीं करना पड़ता, रोम-रोम में सहज ही स्पन्दित होता रहता है।

मौन द्वार है और ध्यान नया आयाम है चेतना का।

मन से, विचार से परे चेतना का वह साम्राज्य है, जिसमें जीवन के साथ सीधा सम्बन्ध प्रतिष्ठित हो जाता है, जिसमें प्रेम का प्रवाह फूट पड़ता है, मैं और तू का अन्तर मिट जाता है, जहाँ दर्शन और व्यवहार दोनों द्वन्द्वातीत हैं। वही ध्यानावस्था है, और वह प्राप्ति का विषय नहीं।

धन, बौद्धिक ज्ञान, प्रतिष्ठा आदि की तरह ध्यान या मौन प्राप्ति का विषय नहीं। अप्राप्त की प्राप्ति की जा सकती है। इसीलिये ध्यान की प्राप्ति का कोई मार्ग भी नहीं। क्योंकि अपने और प्राप्तव्य के बीच के अन्तर को काटने का साधन ही मार्ग कहलाता है।

ध्यानावस्था के द्वार खुलते हैं तटस्थता और आत्मनिरीक्षण से।

ध्यान को कर्म समझने का एक कारण यह हो सकता है कि पतञ्जलि के योगसूत्र का पहला सूत्र है—"योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:"—उसे गलत समझा गया है। हम समझ बैठे हैं कि योग में चित्तवृत्तियों का निरोध करना पड़ता है। यही मानकर सारे द्वन्द्व, संघर्ष, तनाव खड़े कर दिये गये हैं। वास्तव में योग ऐसी अवस्था है जिसमें चित्त का निरोध हो जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारत में अनेकों पद्धतियाँ हैं, जिनमें ध्यान शब्द को क्रिया या कर्म से जोड़ा गया है।

लोग धारणा को ही ध्यान समझते हैं। किसी गुण, रूप, आकार को अपनी वृत्ति में धारण करना और फिर उसमें एकाग्र होना ही धारणा है। यहीं तक मन की क्रिया जा सकती है।

* * * *

ध्यान है एक नई चेतना जो व्यक्ति के अभ्यन्तर को बदल देती है।

ध्यानावस्था में रह कर जीना सम्भव है। जिस प्रकार शारीरिक आवेगों में २४ घण्टे फंसे रहना अनिवार्य नहीं, उसी प्रकार मन के सङ्कल्प-विकल्पों में फँसे रहना भी अनिवार्य नहीं। उनसे परे एक अवस्था है, जिसमें जिया जा सकता है, और तन-मन का करण या साधन के नाते उपयोग किया जा सकता है।

ध्यानावस्था में एक अत्यन्त स्वस्थ, सुभग, सन्तुलित व्यवहार की सम्भावना जीवन में जागृत होती है। फिर वाणी भी मौन की छाया बनती है। शब्दों में से मौन का रस छलकने लगता है। आवेगों, विचारों, विकारों की दुर्गन्ध नहीं रहती।

ध्यान में जीने वाले व्यक्ति का बोलना अनुभूति का सहज निवेदन है। अधिक से अधिक कहें तो बाँट लेना है।

ध्यानावस्था बिन्दु जैसी है, जिसमें आरम्भ ही अन्त है, लम्बाई ही चौड़ाई है, पहले कदम में ही यात्रा की फलश्रुति है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नम्रता

अपने ही अज्ञान, अपने ही अभाव के परिचय में नम्रता का जन्म होता है। उधार के संग्रह को ज्ञान समझने में अहङ्कार पुष्ट होता है।

जो ज्ञान और विद्वत्ता का बोझ ढोता है, वह कभी नम्र नहीं हो सकता।

विनम्रता या शून्यता के धरातल पर जब खड़े होते हैं तो अहङ्कार को इधर से उधर रत्ती-भर भी कदम उठाने का अवकाश नहीं मिलता।

विनम्रता में एक अद्भुत शक्ति है। वह जीवन का आयाम है।

विनम्रता का अर्थ है रिक्तता और उस रिक्तता के ऐश्वर्य का अनुभव जिन्होंने नहीं किया, वे साधना कभी नहीं कर पायेंगे। जिसने बुद्धि और स्मृति को ठूँस-ठूँस कर भर रखा है, वह क्या साधना करेगा ? वह क्या ध्यान करेगा ?

स्वपरिचय तो क्या, अपने मन के क्रिया-कलाप को तटस्थता से देखना, अवलोकन भी हमें आता नहीं। यह बोध होते ही विनम्रता उदित होगी कि मुझे तो कुछ भी मालूम नहीं।

नम्रता वीरों का शृङ्गार है। असमर्थों की वाणी और व्यवहार में नम्रता की गन्ध कहाँ से आएगी ? यह तो पलायनवाद है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निग्रह

जो अपने पर निग्रह, दमन-पीड़न करता है वही, मौका मिलने पर, दूसरे पर आक्रमण करता है। जो अपने साथ क्रूर नहीं होगा, और अपने तन-मन के साथ अन्याय नहीं करेगा, वह दूसरे पर अन्याय कर ही नहीं सकता।

निद्रा-जागृति

न हमारा निद्रा से परिचय है, न जागृति से। निद्रा के नाम पर सपने देखते हैं या तन्द्रा में पड़े रहते हैं और जागृति के नाम पर इन्द्रियवश क्रियाओं में रत रहते हैं।

इन्द्रियों की परवशता में बहते जाना जागृति नहीं है और निद्रा भी नहीं है।

अखण्ड जागृति वह तलवार है जिसकी धार कभी कुन्द नहीं पड़ती।

निर्गुण-निराकार

हम लोगों की चेतना पुरुषत्व-स्त्रीत्व से ग्रस्त है। इसलिये कभी 'उसे' हमने पुरुष के रूप में देखा, तो कभी स्त्री के रूप में। लेकिन प्रभु के कहीं पुरुषत्व और स्त्रीत्व है ?

अन्वय दृष्टि से देखना चाहो तो सभी रूप उस अरूप के ही हैं और व्यतिरेक दृष्टि से देखना चाहो तो उस अरूप के कोई रूप नहीं, उस निर्गुण के कोई गुण नहीं।

जो सर्वत्र है, उसका कोई एकदेशीय आकार नहीं हो सकता, यानी जिसे निराकार कहते हैं, वह आकार-रहित नहीं, आकारातीत है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो निर्गुण, निराकार है उसकी कल्पना कैसे करें ? फिर उसे ज्योति कह कर, विश्वरूप की कल्पना करके, सच्चिदानन्द कह कर उसकी व्यापकता, निर्विकारता की कल्पना करके आप इन शब्दों से एक कृत्रिम मनोदशा दीप्त करते हैं। फिर अपनी बुद्धि को उसका जाम पिलाना चाहते हैं।

साक्षात्कार की अवस्था में हुआ जाता है। साक्षात्कार किया नहीं जाता। ईश्वर साक्षात्कार तक तो यह भाषा ठीक है—'मैंने सगुण साक्षात्कार किया'। क्योंकि वह आप का ही कर्म है। किन्तु निर्गुण-निराकार के क्षेत्र में कर्ता, धर्ता, उपभोक्ता कोई नहीं होता।

निर्विकार-निर्विचार

निर्विचार अवस्था आत्मा का स्वभाव है।

चित्त की निर्विकारता और निर्विचारता ही जीवन का स्वास्थ्य है। उस अवस्था में ही प्रेम का जन्म हो सकता है। विचारों और विकारों के कोलाहल में प्रेम जन्म नहीं पा सकता; सहयोग, साहचर्य और मैत्री की संभावना ही नहीं रहती।

मन को निर्विकार या निर्विचार बनाया नहीं जा सकता। वैसा करने जायेंगे तो बीमारी से दवा ही कहीं अधिक खतरनाक हो जाएगी।

जब तक विकार है तब तक हिंसा है। जब तक विचार है, तब तक हिंसा है। निर्विकारता, निर्विचारता ही अहिंसा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चित्त की निर्विचारता और निर्विकारता कोई शून्यावस्था नहीं है, जड़ता नहीं है, तन्द्रा या रिक्तता नहीं है। वह एक ऐसी सहज, स्वस्थ, सुन्दर अवस्था है जहाँ से उठने वाले प्रतिसाद विकृत नहीं हो सकते, सन्तुलित होते हैं।

परिग्रह

शरीर को चलाने के लिये धनोपार्जन करना एक बात है और संग्रह की लालसा में परिग्रह को बढ़ाते जाना बिल्कुल भिन्न वस्तु है।

प्रतिक्रिया

जिन्हें हम अपनी भावना, अपने विचार, प्रियता, अप्रियता, मान-अपमान समझते हैं, वे सब यान्त्रिक प्रतिक्रियाएँ हैं।

जैसे स्विच दबाने से यान्त्रिक मस्तिष्क (कम्प्यूटर ब्रेन) चालू हो जाता है, वैसे ही हमारा मस्तिष्क प्रतिक्रिया करता है।

इन्द्रिय-विषय-संबन्धों में मन जिस संवेदना को ग्रहण करता है और जिस पर प्रतिक्रिया करता है, उसी को हमने ज्ञान समझ लिया है, जीवन समझ लिया है। इसकी जो आंशिकता है और प्रतिक्रिया की जो यान्त्रिकता है, उसे पहचानना चाहिये।

आज हमारे पास क्रिया-प्रतिक्रिया, आघात-प्रत्याघात के द्वन्द्वों के सिवाय कुछ है ही नहीं। जिस सतह पर बाहर से आघात होता है उसी धरातल पर भीतर से प्रत्याघात उठता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रतिक्रिया को अपनी मान कर हम उसी में तदात्म हो जाते हैं। यह नहीं समझते कि मन का स्वभाव है ऐसी प्रतिक्रिया करना।

* * * *

प्रतिक्रियाओं में शक्ति को बांट देने से, खर्च कर देने से चित्त क्षीण होता है, जर्जर होता है। जीवन एक बड़ा अमूल्य अवसर है। इसे पल-पल में खोना कोई समझदारी तो नहीं है।

इन्द्रियों की ग्रहणशक्ति सीमित है और वह विकृत भी हो सकती है। उन में जो संवेदन जागृत होता है उसे मस्तिष्क तक पहुंचाने वाले ज्ञानतन्तु भी संवेदन की समग्रता को नहीं पहुंचा पाते; उसके किसी एक अंश को ही पहुंचाते हैं। मस्तिष्क, जो अर्थ लगाने का काम करता है, वह भी अपनी संस्कारगत मर्यादाओं से बँधा है। इतनी अनन्त मर्यादाओं के बीच कहीं प्रतिक्रिया होती है। प्रतिक्रिया के लिये भी तो हम स्वतन्त्र नहीं हैं।

जो अपनी प्रतिक्रियाओं के गुलाम हैं वही तानाशाही को जन्म देते हैं। घर में तानाशाही नहीं चली तो मठ-मन्दिर बना लिया, संघ बना लिया।

* * * * *

हम दो ही पर्याय जानते हैं—या तो प्रतिक्रिया को स्वीकार कर उसके वश में हो जाते हैं और या उसका निषेध करके उसे दबाना चाहते हैं। तीसरा पर्याय है कि प्रतिक्रिया को केवल देखा जाए।

प्रतिसाद

आघात और प्रत्याघातों को जिसने यथार्थता से देखा, उसका प्रतिसाद मौन में से उठता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतिसाद (response) कर्म है, क्रिया कर्म नहीं है। जब तक मन की गुलामी रहती है, तबतक हम क्रिया में रत रहते हैं। उस गुलामी का जहाँ अन्त होता है वहाँ कर्म का प्रारम्भ होता है।

प्रतीक

आज तक मानव ने परस्पर व्यवहार के लिये जितने प्रतीक बनाये, वे सब बेकार होते जा रहे हैं और छूटने वाले हैं। नये प्रतीकों के जन्म की वेदना मैं मानव की चेतना में देख रही हूं।

प्रत्यय

अपने प्रत्यय से, छोटे से प्रत्यय से, एक कदम उठाने वाले के जीवन में जो सामर्थ्य है, जो सुषमा है, जो प्रसाद है, जो तेज है, वह उधार लिये हुए प्रत्ययों के आधार पर जीने वालों में नहीं आता।

प्रभुत्ववाद

इस देश में वात्सल्य के नाम पर परिवार में, गुरु-शिष्य-संबन्ध के नाम पर अध्यात्म में और लोकशाही के नाम पर राजनीति में प्रभुत्ववाद चलता है। यह अभिशाप है। अध्यात्म के क्षेत्र से इसे हटाना चाहिये।

प्रमाणवाद

किसी को प्रमाण मानने की इच्छा का विनम्रता से कोई सम्बन्ध नहीं है, यह तो परिश्रम से बचना है, सुरक्षा का मोह है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रयत्न

मनुष्य प्रयत्न करे, उसमें वैज्ञानिकता, सुभगता, शुचिता सब कुछ रखे, लेकिन उससे निष्पन्न होने वाले फल पर नियन्त्रण और शासन करने की अवैज्ञानिकता न रखे।

प्रयत्न कभी व्यर्थ नहीं जाते, लेकिन प्रयत्नों के साथ गणित जोड़ना ठीक नहीं।

प्रश्न

कोई भी प्रश्न कभी व्यक्तिगत नहीं होता। जो जीवित प्रश्न हैं, मरे हुए, उधार लिये हुए सैद्धान्तिक प्रश्न नहीं, जिनका जन्म जीवन में से हुआ है, उन प्रश्नों का आशय हमेशा वैश्विक होता है।

प्रश्न जहाँ जन्म लेता है, वहीं उसका आशय छिपा रहता है और उधार प्रश्न का उत्तर कभी मिलने वाला नहीं है।

प्रारब्ध

जिस किसी कार्य की कारणराशि अज्ञात हो, उसे प्रारब्ध कह दिया जाता है। जैसे-जैसे कारणराशि ज्ञात होती जाती है, वैसे-वैसे प्रारब्ध का क्षेत्र घटता चला जाता है।

तन-मन की मर्यादाओं के कारण जीवन की गतिशीलता में रुकना और ठिठकना हो जाता है। निरन्तर गतिशीलता अनुकूल नहीं पड़ती। कहीं विश्राम, कहीं मंजिल की खोज होने लगती है। तब प्रारब्ध का प्रभाव कहा जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन में मंजिल है ही नहीं। अतः थकावट लगती है, भीतर प्रतिकार या प्रतिरोध पैदा होता है। उसी के परिणामों को प्रारब्ध कहा जाता है।

तन-मन के आवरणों में रहते हुए जो सीमाएँ, मर्यादाएँ उपस्थित हो जाती हैं, उनके कारण जीवन की गति में गति मिलाकर अधिक समय तक चला नहीं जाता। आवरणों के बोझ से प्रत्यय शुद्ध नहीं रहता, आरोपित और स्थूल बनता है, तब गति शिथिल पड़ जाती है, हाँफने लगते हैं, उसे प्रारब्ध कहते हैं।

*   *   *   *

जीवन के साथ प्रारब्ध का कोई सम्बन्ध नहीं है। जीवन की गति सर्वथा स्वतन्त्र है। प्रारब्ध की सत्ता और प्रभाव मन तक ही पहुँचता है। जीवन तक उसकी पहुँच नहीं है।

प्रार्थना

अहंकार की कैद में गिरफ्तार आत्मा जब उस कैद से मुक्त होने के लिए छटपटाता है तो उसकी विकलता शब्दों में व्यक्त होने लगती है और उसे कहते हैं प्रार्थना।

यह व्याकुलता, यह विकलता, यह आर्तता जागृत हो, इसलिये दैनिक जीवन में प्रार्थना-कर्म का समावेश किया जाता है।

प्रार्थना है अहंकार के दुष्ट चक्र से छूटने की आकांक्षा।

प्रार्थना है समस्त चेतना की एक आर्त पुकार, समस्त प्राणों में जगी हुई एक प्यास, एक भूख।

*   *   *   *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रार्थना का प्रयोजन है अपने को यह याद दिलाना कि मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर के जन्म और मृत्यु में से वहने वाला जीवन मैं हूँ। किन्तु हम प्रयोजन को भूलकर प्रतीक को चिपके रहते हैं।

प्रार्थना यदि बहिरंग पर रुक जाए तो हम पाखण्डी बन जाते हैं, दम्भी बन जाते हैं।

दूर बैठे हुए किसी प्रभु को बुलाने के लिये प्रार्थना नहीं है, वह तो अपने आप को स्मरण दिलाने के लिये है।

* * * *

यदि शब्दों पर रुक जाएँगे, शब्दों के छिलके उतार कर यदि अर्थ के गर्भ-गृह में प्रवेश नहीं करेंगे तो प्रार्थना यान्त्रिक क्रिया मात्र रह जाएगी।

जैसे सूर्यस्नान करते हैं, गंगास्नान करते हैं, वैसे ही सन्तों की वाणी में जो अर्थ का प्रकाश है, अर्थ का जल है, जीवन है, अनुभूति का रस है, उसमें स्नान करना, शुचि हो जाना प्रार्थना है।

अनुभूति-सम्पन्न व्यक्तियों की वाणी में, उसके अर्थ में एक बार जाकर गोता लगाना चाहिए ताकि चौबीस घंटे के अनवधान का परिमार्जन हो जाए।

* * * *

हमारी चेतना पर परिग्रह के जो विभिन्न स्तर चिपके हुए हैं, उन सबको एक-एक करके प्रेम से उतार देने की प्रक्रिया प्रार्थना है।

५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेम

उन्मुखता और संवेदनशीलता का व्यक्ति की समग्रता में स्पन्दित होना ही प्रेम है। वही मनुष्य-जीवन का गति-तत्त्व है।

निरहंकारिता या विनम्रता का सौरभ ही प्रेम है। प्रेम कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है जिसे प्राप्त किया जा सकेगा।

प्रेम में जीवन है और द्वेष में मृत्यु। शान्ति में जीवन है और अशान्ति में मृत्यु।

प्रेमहीन जीवन शुष्क होता है, रूखा-सूखा होता है। अंग-प्रत्यंग को, अणु-रेणु को प्रेम से ओत-प्रोत कर देने में ही जीवन की सार्थकता है।

प्रेम की अवस्था में जब अहंकार खो जाता है और मन की समस्त प्रक्रियाएँ शान्त हो जाती हैं, तब चेतना की कौन-सी शक्ति है जो सहज कार्य करा लेती है? जब हम करते नहीं हैं और कर्म हो जाता है, वह क्या है?

प्रेम यानी जीवन की प्रयास-रहित गति। प्रेमावस्था में जीवन की समग्र क्रियाएँ शान्त हैं, समग्रता में मौन है। एक नयी ऊर्जा, एक नयी शान्ति, एक नयी प्रज्ञा, एक नया आलोक भीतर जाग उठता है। उसके प्रकाश में कर्म अपने आप होते रहते हैं। वहाँ कर्मों द्वारा कुछ पाने का प्रयोजन नहीं रहता। जीवित रहने में और कर्मों का माध्यम बनने में ही संतृप्ति है।

* * * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेम मनुष्य के कर्म, ज्ञान या भक्ति का परिणाम नहीं, वह पुरुषार्थ-जन्य नहीं है। प्रेम तो जीवन की एक अवस्था की सुरभि है।

जहाँ प्रेम है वहाँ कर्तव्य के लिए अवकाश कहाँ है? वैसे ही अध्यात्म में उदात्त से उदात्त अथवा उत्तम से उत्तम हेतु या प्रयोजन के लिये कहीं अवकाश नहीं है।

प्रेम में द्वैत का संपूर्ण विलय हो जाता है। और वहाँ अचल कुछ भी नहीं है। प्रेम के जैसा गतिमान् कोई तत्त्व नहीं है।

प्रेम के क्षेत्र में द्रष्टा भी नहीं, दर्शन भी नहीं, दृश्य भी नहीं, भोक्ता भी नहीं, भोग्य भी नहीं।

प्रेम करने वाला और प्रेम का पात्र यदि बच जाय तो वह प्रेम की अवस्था नहीं है, मोह हो सकता है। 'काम' में काम का आश्रय और विषय बचते हैं, लेकिन प्रेम में दो नहीं बचते।

* * * * *

प्रेम में देखने की वेधक प्रज्ञा है, बड़ी भेदक शक्ति है।

प्रेम की तीखी धार चुभ जाती है।

प्रेम हो तो बोझ होता ही नहीं। आप लोग व्यर्थ का बोझ लाद कर हाँफते रहते हैं।

* * * * *

जिस प्रेम का राग-विराग या सविकल्प-निर्विकल्प अवस्थाओं से कोई संबंध नहीं वह प्रेम हमें मालूम नहीं; इसलिये सविकल्प के छोर पर खड़े हों तो निर्विकल्प महामण्डित प्रतीत होता है। पर वह भी स्वभाव नहीं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वभाव तो प्रेम है, आनन्द है।

* * * * *

सत्ता, धन, बड़प्पन आदि के बल पर प्रभुत्ववाद का ज़माना निकल गया है। आर्थिक, राजनैतिक सामाजिक क्षेत्र में गया तो कौटुम्बिक क्षेत्र में भी गया समझिये। किन्तु प्रेम का ज़माना कभी जाने वाला नहीं है, वही शाश्वत है, वही सनातन है।

* * * * *

प्रेम की परिपूर्ति अभिव्यक्ति में है, जिज्ञासा की परिपूर्ति सत्यशोधन में।

प्रेम का हृदय में प्रवेश होना कठिन नहीं है, लेकिन उसे हृदय में धारण करने के लिये बहुत बड़ी शक्ति चाहिए।

* * * * *

प्रेम करना कमजोरों का खेल नहीं है। अपने प्रेम पर जिनकी श्रद्धा नहीं, वे ही अपने साथी की जीवन-चर्या पर शक कर सकते हैं—वह पति हो या पत्नी।

प्रेम को क्या धारण करना पड़ता है? साधना पड़ता हैं? अभ्यास से साधे हुए प्रेम जैसी कुरूप वस्तु कोई नहीं हो सकती।

* * * *

बन्धन

संस्कारों के अनुसार मन की, तन की गुलामी ही तो बन्धन का स्वरूप है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन में बन्धन कहीं बाहर है ही नहीं। बन्धन सब भीतर है। लोग बाहर काटने जाते हैं, इसलिये भीतर जकड़े जाते हैं।

प्रतिक्रियाओं का जो ताना-बाना हम दिन भर बुनते रहते हैं, वही बन्धन का स्रोत है। जीवन में दूसरी कोई गुलामी नहीं है, कोई बन्धन नहीं है।

सब बन्धन मनोनिर्मित हैं। जीवन में न बन्धन हैं न मुक्ति; जीवन की तो बस सत्ता है।

जीवन की निरन्तर गतिशीलता, परिवर्तनशीलता, असुरक्षा—इन सबसे बचने की जो इच्छा होती है, वह है बेचैनी, अस्वस्थता, अशान्ति की जड़। वही है बन्धन।

जीवन-भर बन्धन बनाने की क्रिया चलती है। यह अखण्ड चलने वाली फैक्टरी है।

एक व्यक्ति का जो बन्धन है वह दूसरे व्यक्ति का बन्धन नहीं है।

प्रत्येक व्यक्ति को आन्तर यात्रा में यह खोजना पड़ता है कि मैं बन्धन कहाँ बनाता हूँ, कैसे बनाता हूँ, क्यों बनाता हूँ। इसे वही व्यक्ति जान सकता है और यह उसके ही वश की बात है कि बन्धन बनाने का व्यवसाय छोड़ दे। 'यह बन्धन है' इस बोध से ही यह व्यवसाय विसर्जित हो जाएगा।

भीतर से स्वयं को जकड़ने वाले व्यक्ति को मुक्त कोई नहीं बना सकता। हाथ-पाँव की बेड़ियाँ काटी जा सकती हैं, मन की बेड़ी कौन काटेगा? वह तो मन द्वारा निर्मित है, और जिसका मन है उसी को यह काम करना पड़ता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन बड़ा सरल है। किन्तु मनुष्य उसे जटिल बनाने में बड़ा कुशल है। अपनी ही निर्मित जटिलता के जाल में मनुष्य फँस जाता है और कहता है कि 'मैं बँध गया'।

* * * * *

मन और देह के साथ जो रिश्ता है उसे समझ न पाने के कारण लोग 'बन्धन,' 'दुःख,' 'संसार' की बातें करते हैं।

जीने को बन्धन नाम दिया जाता है लेकिन इस बन्धन के अतिरिक्त कहीं मुक्ति का निवास नहीं।

आध्यात्मिक जीवन अलग और भौतिक जीवन अलग, इस प्रकार जीवन को विभाजित करना ही बन्धन है, यही संसार है।

* * * * *

जो संस्कार मैं ने पाया उसी में समग्र सत्य है, वही एकमेव रास्ता है—यह अभिनिवेश जुड़ते ही बन्धन शुरू होता है। या संस्कारों के कारण बनी सूक्ष्म काया को ही अपने जीवन की समग्रता समझने का भ्रम जब होता है तब व्यक्ति बँधने लगता है।

* * * * *

पिंजड़ा सोने का हो या लोहे का, फ़र्क नहीं पड़ता। संसार के नाम पर कोई बँधी पद्धति या लीक लेकर उसके गुलाम बनें या अध्यात्म के नाम पर, गुलामी तो गुलामी ही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बन्धन-मुक्ति

लोग समझते हैं कि मुक्ति कहीं बाहर है जिसे लाना पड़ेगा और बन्धन का त्याग करना पड़ेगा। बन्धन के स्वरूप और आशय को पहचानने में ही मुक्ति का जन्म है।

बन्धन-मुक्ति परस्पर-विरोधी स्वतन्त्र तथ्य नहीं हैं।

बन्धन के परिचय में ही तो मुक्ति साँस लेती है। बन्धन के स्वरूप और कार्य को पहचानने में ही मुक्ति का सत्त्व है, उसके प्राण हैं। अपनी कमजोरियों को पहचानने में ही शक्ति और सामर्थ्य का संचार है।

बन्धन की सत्यता हो, तभी मुक्ति के लिए अवकाश है। माया के साम्राज्य में ही बन्धन और मुक्ति के गुण गाये जा सकते हैं।

सहजावस्था जीवन है। मुक्ति की महिमा गाने वाले अप्रत्यक्ष रूप से बन्धन की महिमा गा रहे हैं। बन्धन कहाँ है, जो मुक्ति हो ?

बन्धन के छोर पर खड़े हो कर मुक्ति के गीत गाये जाते हैं। लेकिन बन्धन की अपेक्षा में ही मुक्ति की सत्ता है। बन्धन मिथ्या है तो मुक्ति भी उतनी ही मिथ्या है।

बुद्धि

बुद्धि का उपयोग चित्त की भ्रान्तियाँ धोने में है, तथ्य का दर्शन बुद्धि नहीं कराती।

*　*　*　*　*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुद्धि आपका अच्छा वकील है। जब जिधर चाहें, उधर का समर्थन खोज देती है। उन समर्थनों के कारण फिर पाखण्ड, दम्भ, ढोंग का अवसर मिल जाता है कि मैं अपने विकारों के लिए ज़िम्मेदार नहीं हूँ, दूसरा कोई जिम्मेदार हैं।

भक्ति

यह पूरी सृष्टि कितनी रहस्यमय है, इसका भान होना भक्ति है। रहस्य का भान होने के बाद विनम्रता-युक्त व्यवहार होना ही प्रेममय, धर्ममय जीवन है।

सृष्टि में बिखरी हुई सुन्दरता को देखने की आँख भक्ति देती है। जिस किसी ने यह संसार बनाया, वह व्यक्त सृष्टि के पीछे अव्यक्त रह कर मुसकराता है। उसे देखने की कला भक्ति सिखाती है।

सृष्टि से अलग प्रभु नहीं है। सृष्टि प्रभु का ही स्वरूप है। सारे संसार में प्रभु नहीं, सारा संसार ही प्रभु है, यहाँ तक पहुंचने के लिये भक्ति चाहिये।

भय

अहंकार भय के बिना जी नहीं पाता और अहंचालित जीवन होने के कारण भय की सत्ता है।

जहाँ अहंकार चेतना को घेर कर मालिक नहीं बन बैठा है, वहाँ मन से परे भय तथा निर्भय-अभय दोनों से परे जो सहजता है, उसका साम्राज्य है।

* * * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मौत का भय इसलिये है कि जीवन का भय है। जीवन का भय इसलिए है कि अपनी पशुवृत्तियों का आधार छोड़ने से डरते हैं। भय और क्रोध को संरक्षण का साधन मान लिया है।

सुरक्षा के स्वर्ण-पिंजरे में हजारों साल जीने की अपेक्षा क्षण भर उन्मुक्तता से जीने का आनन्द श्रेष्ठ है, यह जिस दिन समझ में आएगा, उस दिन भय टूटेगा।

मनुष्य निरन्तर भय का रोगी है। वह केवल मौत से नहीं डरता, उससे भी अधिक जीवन से डरता है। जीवन का सीधा स्पर्श सहन नहीं होता। इसलिए जीवन से बच-बच कर चलने के जो रास्ते निकाले जाते हैं, उन्हीं का नाम तो शास्त्र है। किन्तु मनुष्य बच नहीं पाता, 'जीवन-प्रूफ' उपाय नहीं मिल पाते। और जब-जब जीवन हमें छूता है, तब-तब काँपते हैं, सिकुड़ जाते हैं।

भारत

यह अभागा कहा जाने वाला जो देश है, इसकी मिट्टी के कण-कण में, जल की हर बूंद में, हवा के हर झोंके में शायद कोई ऐसी चीज पड़ी हो, जो संसार की आज की विकट परिस्थिति में रास्ता सुझाये।

यह सनातन देश है। यूरोप, अमेरिका, जापान की काम करने की पद्धतियाँ यहाँ काम नहीं देंगी। यह धर्मप्राण, अध्यात्म-प्रवण देश भाषा समझेगा धर्म की, अध्यात्म की—यदि ईमानदारी से धर्म और अध्यात्म जीने वाले व्यक्ति सामने आएं तो।

* * * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतवर्ष में जन्म लेना और आत्मा या सत्य की उपलब्धि पाना बहुत ही कठिन है, क्योंकि अध्यात्म की तथाकथित परिभाषायें, शब्द जलवायु में से ही मिल जाते हैं और ऐसा भ्रम हो जाता है कि शब्दों की जानकारी से तथ्य की उपलब्धि हो गई।

इस देश का यह सौभाग्य है कि इतनी सारी प्रतिकूल परिस्थिति में भी न जाने कितने हजारों वर्षों से ऐसे विद्रोही व्यक्ति यहाँ निकलते रहे हैं जो सारे समाज की मान्यताओं को अलग हटा कर अपने प्रत्यय और अपनी उपलब्धि को जीने का साहस करते हैं।

भाव-भावना

भाव केवल जीवन का द्योतक है। भावनायें यान्त्रिक ही हैं। भावजगत् में जीवन का स्पर्श है, लेकिन जहाँ तक भावना, संवेदना, संवेग हैं—वे सब यान्त्रिक क्रियायें ही हैं। किसी की अनगढ़ हैं और किसी की परिष्कृत, इतना ही अन्तर है। लेकिन मानसिक कर्म से सत्य का साक्षात्कार नहीं होता।

मन

मन कोई हमारी निर्मिति नहीं है। यह आदि-मानव से विकसित हुआ एक करण है, यन्त्र है। इसका निर्मूलन नहीं किया जा सकता। यह तथ्य जिन्होंने पहचाना वे मन से लड़ना छोड़ देते हैं।

मेरा मन, तेरा मन यह कहाँ से आया ? एक ही वैश्विक मन है। निखिल मानव जाति ने इसे आयत्त किया है। वही आपके और हमारे साथ है।

* * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम ने यह मान लिया है कि मन ही एकमात्र द्वार है जिस में से हो कर जगत् के साथ संबन्ध हो सकता है। जगत् यानी अन्तर्बाह्य।

मन परिस्थिति का खण्डित दर्शन ही करा सकता है। अखण्ड के दर्शन मन नहीं करा सकता।

मन का जीवन से जो संबन्ध है, वह कितनी मर्यादाओं में से छन कर आता है। और मनुष्य है कि अपने मूल्यों को, अपनी अभिरुचियों को, वितृष्णाओं को लेकर चलता है और प्रतिपल दूसरों पर अपने निर्णय, अपनी मान्यतायें थोपता रहता है।

मन द्रष्टा-दृश्य में जीवन को बाँट देता है। वह कर्ता-कर्म का भेद खड़ा करता है, सहजता का गला घोंट देता है।

* * * *

समाज के मूल्यांकन के एक प्रतीक के रूप में मन हमारे पास है। उस में भरे हुए हैं संस्कार और विचार। इन सब को शान्त होने दें और इन के मौन में क्या घटित होता है— इसे देखें।

मन की एक आँख में भय और दूसरी आँख में सुरक्षा की आकांक्षा रहती है।

* * * *

संवेदनों का सेवन और ज्ञात अनुभवों के आधार पर प्रतिक्रिया—यही मन की कार्य-प्रणाली है। अब मनुष्य ने देख लिया कि यह तो 'कम्प्यूटर' भी कर लेता है। यान्त्रिक मस्तिष्क में उन सब क्रियाओं का संक्रमण संभव है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो स्मरणशक्ति या संगृहीत ज्ञान के आधार पर होती हैं। इसलिये मनुष्य पूछता है कि मुझ में और यन्त्र में क्या अन्तर है ?

अमेरिका में यह शोध हुई है कि मनुष्य जो भी ज्ञान ग्रहण करता है, जिन अनुभवों में से गुजरता है, वे सब रासायनिक द्रव्य के रूप में मस्तिष्क के रक्त-गोलकों में संचित हो जाते हैं। उन्हें निकाला जा सकता है और दूसरे व्यक्ति में डाला जा सकता है।

* * * *

अपने को शिक्षित बनाने का प्रारम्भ यहाँ से हो सकता है कि मन और बुद्धि को एक यन्त्र समझा जाय। फिर इस यन्त्र का समझदारी से, दक्षता से, सुरेखता से उपयोग वहीं करें जहाँ प्रयोजन हो, नाजायज उपयोग न करें। मन को एक साथ सौ विषयों में न भटकायें। एक समय एक ही कर्म अपनी समग्रता से करें। जब काम न हो तब स्मृति में रोमन्थ न करें।

हम मन का विनियोग ठीक से नहीं करते। कोई भी काम करें, उसकी आदत बना लेते हैं और फिर आदतों का ढाँचा खड़ा कर लेते हैं ताकि हर बार अवधान खर्च न करना पड़े। यानी, हम जीना नहीं चाहते। कर्म भी नहीं करना चाहते। स्वयं भी यन्त्र बन जाते हैं। इसी से एक भी कर्म पूरा नहीं होता। खण्डित कर्मों की शृंखला चलती रहती है।

मन की सतह पर रह कर मनुष्य ने वहुत से प्रयोग किये। व्यष्टि और समष्टि के बीच संवाद साधने के, तथाकथित जड़ और चिन्मय के बीच संवाद साधने के प्रयत्न किये। सदियों से न जाने क्या-क्या किया, लेकिन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन की स्वस्थता, संतुलन और प्रसाद नहीं पा सका।

* * * * *

चित्त में उठने वाली वृत्तियों को, प्रशंसा अथवा निन्दा किये बिना जरा देखो तो सही। चित्त में वृत्ति का उठना ही हमारे निःस्पन्द आत्मा में स्पन्दन का उठना है। ये जो स्पन्दन उठते हैं, उन्हें देखना है।

मन का अवलोकन करते-करते सावधान रहने की शक्ति बढ़ती है। सावधान रहने के लिये, साक्षित्व के लिए स्वतन्त्र प्रयास नहीं करना पड़ता।

अवलोकन में मानसिक क्रियाएं शान्त नहीं होती हैं, केवल स्थगित हो जाती हैं।

मन की क्रियाओं का तटस्थ निरीक्षण बिना प्रयास के करना है।

* * * * *

सत्य की उपलब्धि के लिये समस्त मानसिक क्रियाओं को शान्त होने देना होता है। और फिर मन से परे जो अन्धकार का एक सुन्दर साम्राज्य है, उसमें संचार करना होता है।

हम तो मानसिक क्रियाओं के शान्त होने में मन की मृत्यु मान लेते हैं और घबरा जाते हैं।

मानसिक क्रियाओं को शान्त होने का अवसर देना चाहिए। यही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। इसमें बहुत साहस चाहिये।

मन से परे जाना जड़ होना नहीं है। सामान्य मनुष्य की सुख-दुःख की अनुभूति से शतगुण अधिक उत्कट अनुभूति उसे होती है, जो मन से परे जीता है। उसका तो अन्न-जल ग्रहण करना भी केवल भूख-प्यास को मिटाने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की क्रिया नहीं; अन्न-जल के साथ समग्र समागम होता है उसका, और उस मिलन से नस-नस में घटित होने वाले विधायक तथ्य वह अनुभव कर पाता है।

* * * *

मन से परे जो जीवन है, उसका हमें अभी परिचय नहीं है। यह तथ्य बहुत विनम्रता से ग्रहण करना चाहिये। हम निरन्तर मन के द्वारा जी रहे हैं और इस माध्यम के द्वारा हम आत्मा को उपलब्ध करना चाहते हैं। वह नहीं होगा, नहीं होगा, नहीं होगा।

मन जब तक जागृत है, और कल्पना कर सकता है, तब तक आलोक की रश्मि भी वहाँ पहुँचती नहीं।

मन को ज्ञात के क्षेत्र में से अज्ञात में हाथ पाँव फैलाने मत दीजिये। उसी में से तो सम्प्रदाय बने हैं। उससे सिर्फ रहस्यवाद हाथ में आता है, आत्मसाक्षात्कार नहीं। कवियों के लिये उसका उपयोग है, साधकों के लिये नहीं।

* * * *

मन के साथ मैत्री जब तक नहीं होगी तब तक मन से मुक्ति भी नहीं होगी।

आत्मा का परिचय पाने के लिये मन के सागर में गोते लगाने पड़ेंगे। तैरना हो तो पानी में कूद पड़ो। गद्दे बिछाकर तैरने की प्रक्रिया सीखी नहीं जा सकती।

मन के साथ सीधा परिचय प्राप्त करना पहला काम हैं। ग्रन्थों में पढ़कर नहीं, मन की गति-विधि को सीधे देखकर उससे परिचय प्राप्त करें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपके जीवन में सबसे उपेक्षित कोई तत्त्व है तो वह आपका मन है। कभी मन के लिये करुणा आई आप में ? कभी अपने मन से मैत्री की आपने ? प्रेम किया है अपने मन से ? दर्पण में तन को खूब देखते हो। कभी ध्यान के दर्पण में मन को भी देखा है ?

मन के साथ यदि आपकी सच्ची मैत्री होगी तो आपका मन अपने आप शान्त बैठेगा। आपके प्रेम के कारण इस प्रकार शान्त हो जायगा कि उसके अस्तित्व का आपको आभास तक नहीं मिलेगा।

मन का लय नहीं, मन पर विजय नहीं, मन के साथ मैत्री और प्रेम करना है।

* * * *

मनको शत्रु न समझें। मन से लड़ने और मन को जीतने की भाषा अवैज्ञानिक है। उसमें शक्ति और समय खोना व्यर्थ है।

मन के साथ लड़ेंगे तो अहंकार कोई-न-कोई क्षेत्र ऐसा खड़ा कर देगा जहाँ वह विकार और विचार का अपना क्षेत्र फिर से स्थापित कर सके। ऐसा न होता तो संप्रदाय नहीं बनते और उनमें स्पर्धा-प्रतिस्पर्धा न चलती।

मानसिक विकार या विचार संघर्ष की वस्तु नहीं हैं। संघर्ष करने लगेंगे तो होता यह है कि आप अहंकार और बुद्धि की मदद से, अचेतन में पड़े हुए संस्कार-पुंजों के साथ लड़ाई पर उतर आते हैं। विचार और विकारों को एक क्षेत्र में दबाने गये तो दूसरे क्षेत्र में वे दूसरे रूप में उभर आते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संकल्प, प्रतिज्ञा, व्रत, यम-नियम आदि का निर्माण चेतन मन के स्तर पर होता है। इसे कहा जाता है आदर्श और ध्येय। अचेतन मन में जो पड़ा हुआ है, वह तथ्य है आपके जीवन का। फिर आदर्श के सहारे आप तथ्य से लड़ने जाते हैं। और संघर्ष चलता ही रहता है। फिर आप जी नहीं पाते।

मन के साथ लड़ने से आप मन के स्तर पर ही रहेंगे। यानी अचेतन मन की कर्म-परम्परा एक प्रकार की और चेतन मन की दूसरे प्रकार की। अब व्यक्तित्व दो हिस्सों में बँट गया। अचेतन मन की, संस्कारों की जो गति है, उसे रोकने, मोड़ने, तोड़ने के लिये आप ने चेतन मन में एक कृत्रिम गति का निर्माण किया।

जैसे बालक के साथ मैत्री करने का रास्ता ताड़ना नहीं है और सिखाने का भी वह रास्ता नहीं है, वैसे ही मन को कुछ सिखाना है तो उसे दुश्मन मानकर उससे लड़िये नहीं।

मन बहुत कोमल है; बहुत प्रेम से, करुणा से उसके साथ पेश आइए। आप मित्र बनेंगे तो आपकी ताकत बढ़ेगी और शत्रु बनेंगे तो शुरू में ही असमर्थ होंगे।

लोगों ने सोचा कि सत्य यदि मन से नहीं मिलता है तो हम मन से लड़ेंगे, संघर्ष करेंगे, उसे दबाएँगे। लेकिन सहस्रों वर्षों की लड़ाई के बाद भी न कोई मन को मार सका है, न जीत सका है। और जिन्होंने मन को मार भी डाला उनका जीवन क्षत-विक्षत हो गया, व्यक्तित्व में कुण्ठाएं उत्पन्न हो गईं।

मन को रोकने से मन की गति बढ़ती है। निषेध में से वासनाओं को प्रोत्साहन मिलता है। जब आप निषेध या प्रशंसा नहीं करेंगे, तब मन जाएगा कहाँ ? उसका दौड़ने का मजा जो निकल जाएगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन्दिर

जिस शव में शिव तत्त्व रहता है वही है असली मन्दिर। लोग बनाते हैं ईंट पत्थर के मन्दिर। अपने पास ही तो बड़े सुन्दर मन्दिर हैं जिनमें स्वयं अधिष्ठाता देवता रहते हैं। लेकिन देवता भी खोजे जाते हैं, फिर उपासना का खेल चलता है। अपनी-अपनी रुचि। कौन कितना चक्कर काट कर सत्य के पास आएगा, इसका कोई उत्तर गणित या तर्क के पास नहीं है।

महत्त्वाकांक्षा

'मैं ने यह पाया था, मैं यह पाऊँ, इसे दूसरे लोग देखें' या 'मैं ने प्राप्त किया, इसलिये मुझे प्रतिष्ठा दें' इस प्रकार प्राप्ति, संग्रह, सत्ता और प्रतिष्ठा की अभिसन्धि जहाँ है वहीं महत्त्वाकांक्षा शब्द का प्रयोग होता है।

आवश्यकता की पूर्ति के लिए हम नहीं कमाते हैं, हम तो सामाजिक प्रतिष्ठा के लिये स्पर्धा में उतरते हैं। और यह महत्त्वाकांक्षा है, अहंकार है। आवश्यकता की परिपूर्ति की एक मर्यादा है, सीमा है। लेकिन महत्त्वाकांक्षा का कभी अन्त नहीं है। आप अपनी आवश्यकता को समझ कर कहीं लक्ष्मण-रेखा खींचें।

महत्त्वाकांक्षी आदमी कभी अहिंसक या शान्तिप्रिय नहीं हो सकता। वह अपने आप को दूसरों के साथ तौलता रहता है, नापता है और दूसरे की तुलना में कैसे आगे बढ़ूं, यही उसे चिन्ता रहती है।

*   *   *   *   *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिस दिन बोध होगा कि शरीर, मन और बुद्धि ये हमारे उपकरण हैं, साधन हैं, हमारा सत्त्व नहीं हैं; हमारा सत्त्व मन और बुद्धि से परे है, उस दिन फिर मानसिक और बौद्धिक महत्त्वाकांक्षा या स्पर्धा में आप किस प्रकार रहेंगे ?

मानव, मानवता

मानव का जन्म होना मानव-देहधारी पशु का जन्म है। मनुष्य का देह उपलब्ध होना एक बात है और व्यक्तित्व में मानवता का आशय विकसित होना, पुष्ट होना दूसरी बात है।

मानव का जन्म होना ही अभी बाकी है तो मानव समाज क्या बनेगा ? अपनी सत्ता और स्थिति को जो पहचान नहीं सका है, वह क्या दूसरों से व्यवहार करेगा ?

हम लोगों में न सान्निध्य है, न सहवास, न संवाद, न सहजीवन। एक-दूसरे से टूटे हुए, बिखरे हुए जीते चले जाते हैं।

मनुष्य की आकृति प्राप्त होने से मानव बनने का अवसर मात्र मिलता है उससे मानवता नहीं आ जाती।

* * * * *

मानव आज ऐसा अपरिपक्व है कि अपने विचारों और विकारों की भी जिम्मेदारी खुद कबूल करने को तैयार नहीं। ऐसे मानव को बालिग कैसे कहा जाय जो अपने जीवन की जिम्मेदारी खुद उठाने को तैयार नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिपक्व मानव तो वह है जो अपने को जो सत्य दिखाता है उसके लिये खड़ा हो जाए और समाज यदि जीने दे तो जिये और मार डाले तो मरे।

मानव का आशय अभी भीतर परिपक्व नहीं हुआ है। प्रेम ही है मानवता का परिपक्व आशय या परिणति। वहाँ तक पहुँचे नहीं है, इसीलिये क्रोध, द्वेष, घृणा, सन्देह, भय आदि वर्तमान हैं।

* * * * *

स्वामित्व की तुलना, प्रतियोगिता, महात्त्वाकांक्षा बड़े प्रतिष्ठित जीवन मूल्य हैं समाज के। इन तीन असुरों को जब तक नहीं हटाते तब तक नया मानव-समाज बनेगा नहीं।

पूंजीवादी ने मानव को एक नाप-तौल से नापा है, साम्यवादी आदि दूसरे नापों से नापते हैं। पर नाप बदलने से वस्तु नहीं बदल जाती।

मनुष्य को यही सिखाया गया है कि तू दूसरों के साथ अपनी तुलना कर। तौलने के लिये समाज के बने बनाये बाट ले लेना। तौल में जितना उतरे उतनी ही तेरी कीमत है। अपने आप की अपने में कोई सत्ता है, कोई निरपेक्ष, स्वायत्त, आत्मनिर्भर जीवन है यह कोई नहीं सिखाता।

दूसरों की आँख में अपनी कीमत कितनी आँकी जा रही है, यही देखकर लोग जीते हैं। मानव मानव है, इसलिये उसका मूल्य नहीं है।

अध्यात्म का यह प्रयास है कि मनुष्य को सिखाए कि तुझमें एक अपने आप में आलोकित चैतन्य सत्ता की रश्मि है। तेरा अपने आपमें होना ही कृतार्थता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानव का जन्म अपने भीतर होने दें, उतना साहस हममे नहीं। परम्परागत मान्यताओं की तरंगों पर लुढ़कते-लुढ़कते जन्म से मरण तक पहुंच जाते हैं। जैसे-तैसे, हँसते रोते। जीने का साहस किसे है ?

* * * *

मानव-मात्र मुक्ति का अधिकारी है—स्त्री हो या पुरुष। आत्मसाक्षात्कार प्रत्येक मनुष्य का अधिकार है, लेकिन लोगों ने इसे बहुत कठिन माना।

मार्गदर्शन

मार्गदर्शन किया नहीं जाता। लेकिन पाया जरूर जाता है। करने के लिये 'गुरु' अवस्था में इतनी अहन्ता शेष नहीं रहती कि मैं तुम्हारा मार्गदर्शन करूँगा।

जहाँ एक-एक व्यक्ति अद्वितीय है और अपने अद्वितीय बन्धनों को बनाता चला जाता है, वहाँ कोई सर्व-सामान्य नियम बनाकर मार्गदर्शन कैसे करेगा ?

मार्ग तो भीतर है, दूसरा कोई मार्गदर्शन कैसे करेगा ? जो खाइयाँ, पहाड़ियाँ गड्ढे, मृगजल भीतर हैं, वे मेरे मन के बनाये हुए हैं। इसलिये व्यक्ति स्वयं ही समझ सकता है कि कहाँ-कहाँ क्या-क्या बनाकर रखा है। दूसरे व्यक्ति को क्या ? और किसी ज्योतिर्मय, प्रेममय व्यक्ति को वह दीखता भी हो तो ऐसा आक्रमण का शील वह कहाँ से लाए कि जो दीखता है उसे हाथ पकड़ कर आपको दिखाये ?

देश और काल में, दृश्य और व्यक्त में ऐसे चिह्न हैं जो बदलते नहीं हैं, जिनको बतलाया जा सकता है, जिनका निर्देश हो सकता है, जो सबके लिये स्थिर हैं। लेकिन अपने मन के करघे पर हम बन्धनों का जो ताना-बाना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुनते रहते हैं, वह स्थिर नहीं है। वह तो प्रत्येक व्यक्ति का अपना अद्वितीय है। कोई दूसरा व्यक्ति उसे दिखा नहीं सकता, तोड़ नहीं सकता।

* * * *

मन के समस्त व्यापार शान्त होने के बाद 'मार्गदर्शन' और 'आचरण' पृथक् व्यापार नहीं रह जाते।

मिलन

दो व्यक्तियों की सहज समरसता, एकरसता ही मिलन है। वह शब्द की सतह पर संभव नहीं। मौन में ही आत्ममिलन सम्भव है! जो अपने से मिला है, वही दूसरे से मिल सकता है।

नाम, वर्णन, व्याख्याओं की बैसाखियों के सहारे चित्त चलता है। उसे न साक्षात्कार होता है न मिलन।

सृष्टि के साथ मिलन होने में बुद्धि सहायक तत्त्व नहीं है। वह एक दूरी बनाये रखती है और केवल जानकारी का संग्रह होने देती है। पर वह ग्रहण या संचय-रूपी ज्ञान मिलन में बाधक तत्त्व है।

मुक्ति, मोक्ष

मुक्तावस्था मौनावस्था है। मुक्त व्यक्ति का व्यवहार मन की भूमिका पर से नहीं होता। उसका मन बधिर या मूर्छित नहीं है। आप लोगों से भी अधिक संवेदनशीलता, अधिक जागरूकता, अधिक उत्कटता उसमें है। लेकिन मन की भूमिका में वह बैठा नहीं रहता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन के झूले पर से एकबारगी नीचे उतर जाना, सुख-दु:ख, मान-अपमान, शीत-उष्ण, सफलता-असफलता— इन सबके बीच से बादशाह की शान से गुजरते जाना मुक्ति है।

भावनाओं की, संवेदनशीलता की बधिरता का नाम स्थितप्रज्ञता नहीं है। बल्कि उसमें तो सारे विश्व का सुख-दु:ख अपना बन जाता है, सारे विश्व के अभाव और त्रुटियाँ अपनी बन जाती हैं। इसका नाम मोक्ष है।

मोक्ष का न छोड़ने से सम्बन्ध है, न खोजने से। उसका तो बस सम्बन्ध है समग्रता में प्रतिष्ठित होने से। जब तक 'मैं देह हूं' 'मैं मन हूं' इस भ्रम में प्रतिष्ठित रहेंगे, तब तक तन-मन की गुलामी में ही जिन्दगी कटेगी।

मोक्ष है समग्र चेतना का, पूरे व्यक्तित्व का समग्रता में उत्थान।

मोक्ष है अहंकार का निर्मूल होना, मोक्ष है जीवन की प्रकृति में से अहं नाम के केन्द्र का नि:शेष हो जाना, नष्ट हो जाना।

* * * *

जन्म के हाथ में हाथ मिलाकर, कदम से कदम मिलाकर मृत्यु चलती है, यह जिसे मालूम है, वह शरीर में रहते हुए भी शरीर से बँधा हुआ नहीं रहता।

* * * *

अव्यक्त में से लावण्य पाने की कला ही तो मुक्ति है।

मृत्यु

मृत्यु क्या है, यह आपको मालूम नहीं है और जो ज्ञात नहीं है, उससे भय कैसा? ज्ञात का मोह है। सुरक्षा की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वासना ज्ञात का आँचल छोड़ने नहीं देती। ज्ञात का आँचल कहीं छूट न जाए, इसका भय है, मृत्यु का भय नहीं है।

जो जीता है, वही तो मर पाता है। मरना कोई खेल है? जो जीवन को आलिंगन नहीं दे पाता वह मरने का मजा क्या जाने?

मरने का साहस किसमें है? मरने वाले कम हैं, मारे जाने वाले अधिकतर हैं। जीने वाले भी कम हैं। मान्यताओं, विचारों, भावनाओं की तरंगों पर प्रवाहपतित की तरह बहने वाले ही अधिक हैं। किन्तु जो मरना जानता है वही जीने का मजा लूट पाता है।

भय केवल मृत्यु का ही क्यों हो? फिर तो जन्म का भी भय होना चाहिये क्योंकि जन्म की छाया में मृत्यु पलती है और मृत्यु की छाया में जन्म पलता है।

जीवन के तथ्य के साथ प्रतिक्षण रहने का जो साहस करता है, उसे मृत्यु का भय नहीं रहता।

मरना तो एक पल-भर में हो जाता है; वह कोई समस्या नहीं है। किन्तु मृत्यु की कल्पना से ही लोग भय-भीत होते रहते हैं।

मैत्री

विचारों के आकर्षण, रूप के आकर्षण, गुणों के आकर्षण से जो मैत्री पनपती है, वह सोपाधिक है, तथा-कथित मैत्री है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वास्तविक मैत्री की समग्रता में एकता का अनुभव होता है, शब्द का अन्तर भी उस निगूढ़ता में सहन नहीं होता।

मौन

बाह्य शारीरिक व्यापार या वाग्-व्यापार का संवरण मौन नहीं है। मौन है चित्त की ऐसी निःस्पन्द अवस्था, जहाँ किसी प्रकार की वृत्ति या तरंग नहीं उठती।

मौन में चित्तवृत्तियाँ दृश्य हों, उनका कोई पृथक् द्रष्टा हो, और वह दर्शन नाम की क्रिया करता हो ऐसा नहीं होता। वहाँ तो द्रष्टा-दृश्य की अलग हस्तियाँ मिट जाती हैं। रहता है केवल देखना। कौन देखता है, किसे देखता है, यह पूछने की वहाँ गुंजाइश नहीं।

मौन में जो दर्शन होता है, साक्षात्कार या मिलन होता है, वहाँ सृष्टि की शेष सत्ता से पृथक् कोई द्रष्टा नहीं है। वह तो आसपास की वस्तुओं और व्यक्तियों के दर्पणों में अपने-आप को देखने की लीला है। द्रष्टा वहाँ कोई नहीं, केवल चित्‌शक्ति का विलास है।

मौन की अवस्था में अखण्ड जीने वाला व्यक्ति निरन्तर होने वाले आघात-प्रत्याघातों को नई दृष्टि के आलोक में देखता है। इसलिये आघात से क्षुब्ध नहीं होता और प्रत्याघात का गुलाम नहीं बनता।

अहन्ता की दुर्गन्ध से मुक्त होकर मौन में स्थित, प्रतिष्ठित होने वाला व्यक्ति तनाव-रहित, संघर्षातीत होकर सहजता से कर्म करता है। उसके जीवन में नया प्रभात है, नया आलोक है। जो संसार आपको दिखता है वह उसे नहीं दिखेगा। समाज के जिस मूल्यांकन के आप शिकार हैं, वह उसका शिकार नहीं होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मौन में बैठने वालों को निस्तरंग, निष्काम, निःस्पन्द चेतना के दर्शन होते हैं, जहाँ बिकार, विचार किसी की गति नहीं है। वह मनुष्य का सत्त्व है। वहाँ जीवन के साथ सीधा सम्बन्ध होना है, अनुभूति के मार्फत अप्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता।

क्रिया की शक्ति है, लेकिन क्रिया-प्रवणता नहीं है, अवधान है, लेकिन प्रतिक्रिया नहीं है—यही मौन का सत्त्व है। इस दशा में निरन्तर रहने वाले व्यक्ति को जब मन या बुद्धि का उपयोग करना पड़ता है, तो उसकी क्रिया-कुशलता सौगुनी बढ़ जाती है।

मन के व्यापार शान्त होने पर निष्क्रियता नहीं आती, तन्द्रा नहीं, जड़ता नहीं। एक नये जीवन का प्रभात होता है। वह अभावात्मक नहीं है। प्रत्येक क्रान्तिकारी को मन के मौन में घटित होने वाले विस्फोट में से गुजरना पड़ता है।

मौन है चित्त की निष्कम्प अवस्था, जिसमें भावना, विचार के कम्पन, तरंग नहीं हैं। मन और बुद्धि से परे पड़ी हुई चेतना तब कार्यशील बनती है।

मन, बुद्धि के शान्त होने का पहला परिणाम यह होता है कि परस्पर-विरोधी इच्छाओं, विचार-वासनाओं में बँटी हुई, अवरुद्ध शक्ति को अपनी समग्रता में रहने का अवकाश मिलता जाता है। ऊर्जा का पूर्णता में आना जीवन की अपूर्व घटना है। जिस शक्ति से हमारा सम्बन्ध केवल एक खण्ड में, अंश में था, उसे अपनी समग्रता में हमारे भीतर उपलब्ध होने का अवसर मिलता है।

* * * ० *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब यह पता चलता है कि संकल्प-विकल्प के चरणों से चलने से जीवन की यथार्थता का बोध नहीं हो सकता, तो मन के विश्राम में बैठने पर मौन जी उठता है।

मौन करने के लिये नहीं बैठा जाता। मौन का जन्म हो सके, इसकी अनुकूलता करने बैठना होता है।

कुछ करने का हेतु लेकर, अनुभूतियों की अभिसन्धि लेकर बैठेंगे तो मौन का जन्म नहीं हो सकेगा। 'न होने' और 'न करने' की अवस्था में प्रवेश पाने के लिये बैठें।

एकान्त में बैठना और मौन को जी उठने का अवसर देना, यह साहस का काम है, वीरों का काम है, क्योंकि वहाँ अहङ्कार के विकराल रूप से परिचय होता है। उससे डरें नहीं। अहङ्कार का दम घुटना, उसकी छटपटाहट खूब धीरज से देखें।

* * * * *

मन की क्रियायें जिस प्रकार आपके जीवन का आयाम बनी हुई हैं, उसी प्रकार मौन भी एक नया आयाम है।

मौन से आज हमारा परिचय नहीं है। क्रिया के प्रति प्रवृत्ति या उससे निवृत्ति हमें मालूम है। लेकिन वृत्ति दोनों के भीतर है।

बाहर का व्यापार छोड़ कर आंख बन्द करके बैठे और भीतर का व्यापार शुरू किया, यह मौन नहीं है। वास्तविक मौन में बाहर की निष्क्रियता भी हो सकती है और बाहर की क्रियाओं के बीच भी आन्तरिक मौन की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समृद्धि या ऐश्वर्य को आँच नहीं पहुँचती, यह भी हो सकता है।

*　　*　　*　　*　　*

वाणी मौन की छाया है, पृथक् पदार्थ नहीं। व्यक्त छाया है अव्यक्त की। मौन काया है, शब्द छाया है।

मौन में सार्वदेशिकता है, और वाग्-व्यापार में आंशिकता। इसलिये मौन में चेतना की न सिर्फ ऊष्मा है, बल्कि चेतना की समग्रता की झलक है। शब्द चाहे कितने ही निर्दोष हों, चिन्तन चाहे कितना ही तर्कशुद्ध हो, फिर भी अपूर्णता की बू से वाग्व्यापार भर जाता है।

यथार्थ दर्शन

जब तक चित्त में किसी न किसी वृत्ति की तरङ्ग उठती रहती है तब तक इन्द्रिय-विषय-सम्बन्ध होने पर भी पदार्थ की यथार्थता और समग्रता हम तक पहुँच नहीं पाती। हमारा एक अंश पदार्थ के एक खण्ड को देखता है, समग्रता को नहीं।

सबसे पहले तो इस बात का प्रत्यय (बोध) होना चाहिये कि मुझे देखना, सुनना नहीं आता। नाम और रूप के बिना, विचार और हेतु के बिना मैं देख नहीं सकता। प्रत्यक्ष के लिये मेरा जो उपकरण है वह अपूर्ण है।

ज्ञान और संस्कार आप को पदार्थ से, जीवन की यथार्थता से मिलने नहीं देते। जीवन के साथ मिलन में ज्ञान और अनुभूति बहुत बड़े प्रत्यवाय हैं।

*　　*　　*　　*　　*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वस्तुओं के आकार, प्रकार, गुण—ये सब हमारे लिये, संस्कारों के अनुसार, पहले से ही निश्चित रहते हैं। अभिज्ञा का तो हमें मौका ही नहीं मिलता; हम केवल प्रत्यभिज्ञा करते हैं। जिस प्रकार के संस्कार बचपन से हमारे मस्तिष्क में भर दिये गये हैं, उनके अनुसार ही हमारी पहचान है।

जहाँ तक आप वस्तुओं को, पहले से ही ज्ञात नामों व गुणों से अलंकृत करके देखते हैं वहाँ तक उनके सत्य-स्वरूप का दर्शन नहीं होता। अध्यात्म है—नाम, रूप, गुण आदि सभी वस्त्रों को उतार कर सत्य को अनावृत रूप में देखना।

* * * * *

संसार से जब तक थोड़ी भी सुखेच्छा रहेगी, तब तक वस्तुओं का व्यक्तियों के साथ अहैतुक सम्बन्ध होता ही नहीं। हेतु के चश्मे से देखने पर वस्तु या व्यक्ति के वास्तव दर्शन नहीं होते। इसलिए मनुष्य को साहस करके यह देख लेना चाहिए कि वस्तुओं या व्यक्तियों के साथ उसका सम्बन्ध सहेतुक है या निर्हेतुक।

वर्ग-विभाजन

आज एक उत्पादक वर्ग बना है, दूसरा उपभोक्ता वर्ग—ऐसी वर्ग-व्यवस्था प्राचीन वर्ण-व्यवस्था से कम घातक नहीं है।

वर्तमान से प्रेम

भूतकाल की स्मृति से और भविष्य की कल्पना से खेलने की आपको फुर्सत है, लेकिन वर्तमान में प्रभु ने सृष्टि का जो सौन्दर्य चारों ओर बिखेर रखा है, उसके साथ क्षण-भर के लिए भी तादात्म्य करने का समय किसी को नहीं है, प्रेम करना तो दूर रहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूतकाल की स्मृति से हम क्यों खेलते हैं और भविष्य के सपने क्यों देखते हैं ? क्योंकि वर्तमान से हमें प्रेम नहीं है, आनन्द नहीं है। इसलिए पलायन करते हैं, कभी भूतकाल की गुफा में तो कभी भविष्य के जङ्गल में।

जिसे जीवन से प्रेम है, उसकी सुन्दरता, कुरूपता, उसके सुख-दुःख, उसकी तीक्ष्णता, कोमलता—सब कुछ से, जीवन की समग्रता से जिसे प्रेम है, उसका मन न भूतकाल में जाएगा और न भविष्य में आश्रय खोजेगा। वह तो वर्तमान के प्रत्येक क्षण की मुट्ठी में जो प्रभु का सन्देश है, उसे देख-देख कर खुश रहता है।

विकास

जैसे कली अपनी गति से ही खिलती है, फूँक मारने से नहीं खिल सकती, वैसे ही बच्चों का विकास तो अपनी गति से होगा। किन्तु माँ-बाप को बड़ी उतावली रहती है।

विचार-विकार

समझा जाता है कि काम-क्रोधादि ही विकार हैं। किन्तु शास्त्रीय दृष्टि से विचार भी विकार है। चित्त में उठने वाली हर तरङ्ग विकार है।

विचार-विकार भी जड़ हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों का कहना है कि जब मनुष्य विचार करता है तब वह भले ही विचारों को शब्द-बद्ध न करे, तो भी उसके व्यक्तित्व से एक पदार्थ निकलता है—अव्यक्त, अदृश्य स्पन्दनों के रूप में।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विचार 'ईथर' से भी सूक्ष्म है। जो भी विचार उठता है वह कहीं न कहीं जा कर देह-रूप धारण करता है। जब स्त्री-पुरुषों का सम्बन्ध होता है, तब जिस प्रकार की मानसिक अवस्था दम्पती की होगी वह अवस्था अपने अनुरूप विचारों का आकर्षण कर के बीज के साथ उन्हें सम्बद्ध कर देगी।

विचार के स्पन्दन हैं, रंग हैं, आकार हैं। आप के मन में जब तक जो भी विचार उठेंगे, तब तक उन विचारों का वातावरण आप के चारों तरफ़ रहेगा। वे रंग, वे स्पन्दन आप के आसपास खेलते रहेंगे। जिसने संवेदन-शीलता को परिष्कृत कर लिया है वह उन्हें देख लेगा।

जिन्हें हम विचार समझते हैं, वे विचार होते ही नहीं हैं, वे होती हैं हमारी प्रतिक्रियायें। बौद्धिक. भावनात्मक प्रतिक्रिया को हम विचार समझते हैं, वे सब यान्त्रिक प्रतिक्रियायें हैं, उनमें सहजता नहीं है, वे स्वयम्भू नहीं, स्वायत्त नहीं, स्वतन्त्र नहीं।

विचार करना नहीं पड़ता। विचार के दर्शन होते हैं। चेतन और अचेतन मन की शान्ति में सच्चे विचार का जन्म होता है। इसीलिये ऋषियों को मन्त्रद्रष्टा कहा गया है, रचयिता नहीं।

विचार-संग्रह

जीवन को समझने की अभिमुखता ज्ञान के संग्रह से तृप्त नहीं होती।

संस्कारों का संग्रह, विचारों का, भावनाओं का संग्रह, सन्तों के जीवन-चरितों में से उनकी अनुभूतियों का संग्रह यह अध्यात्म नहीं है। यह संग्रह बड़ा घातक हो सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नये-नये विचारों के संग्रह की आकांक्षा सच ही बड़ी खतरनाक चीज है, क्योंकि स्थूल का संग्रह तो कदाचित् छूट भी जायेगा पर सूक्ष्म का संग्रह ऐसा चिपक जाता है जैसे हड्डी पर लिपटा हुआ चमड़ी का वस्त्र। मान लिया जाता है कि यही मेरा व्यक्तित्व है, यही मेरा स्वरूप है।

धन के संग्रह को ठोकर मारना आसान है। लेकिन विचार-राशि और संस्कार-राशि का त्याग करना या उसका ममत्व छूटना बड़ा कठिन है, क्योंकि उसी पर अहङ्कार पलता है। वह तो कर्ण के कवच-कुण्डल जैसे हैं जिनका निकलना मुश्किल है।

विज्ञान

विज्ञान बाहर की सृष्टि में तथ्य को खोजने की एक पद्धति है। उसी प्रकार भीतर के तथ्य की खोज के लिए ध्यान एक पद्धति है।

विद्रोह

आज सारी जीवन-पद्धति में जरूर कोई त्रुटि है, कोई कमी है, जिसके कारण हिंसा की आग बुझती नही है, संघर्ष के तनाव मिटते नहीं हैं।

आज ऐसा कोई देश नहीं जहाँ प्रचलित जीवन-पद्धति के प्रति सन्देह की निगाह न उठती हो, तूफान और विद्रोह न उठते हों।

आज के उच्छृङ्खल अविवेकी युवक समझ नहीं पा रहे हैं, किस दिशा में उठें, किस दिशा में प्रयास करें। टकरा रहे हैं अपने आप से और समाज से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्म, राजनीति, राष्ट्र, विश्वशान्ति—किसी के भी नाम से आज किसी को बहलाया नहीं जा सकता, यह असन्तोष और बेचैनी की आँधी जितनी प्रबल होती देखती हूँ उतना ही हृदय प्रसन्न होता है। ये श्मशान की ज्वालायें नहीं हैं, आनेवाले नये जीवन की सूचक हैं।

संसार भर के नव-युवक-युवतियाँ कब तक विद्रोह में आनन्द पायेंगें ? विद्रोह से क्रान्ति तक का फ़ासला रह गया है जो इन्हें काटना है। विद्रोह से क्रान्ति तक जाने का जो युग है उसका उषःकाल देख रही हूँ।

विद्रोह से केवल बाह्य परिस्थिति में परिवर्तन होता है, और बाह्य परिवर्तन से आन्तर परिवर्तन होना कोई आवश्यक नहीं है ! बाह्य परिवर्तन आन्तर परिवर्तन का प्रतिबिम्ब हो भी सकता है।

संसार को आवश्यकता है क्रान्ति की। विद्रोह से उथलपुथल हो सकती है, विध्वंस हो सकता है, लेकिन आवाहन है विधायक सर्जन का। और उसके लिये जो प्रतिभा के उन्मेष चाहिये, वे द्वेष और कटुता से भरे हृदयों से कभी नहीं उठ सकते। मंगलता और पवित्रता का जन्म क्रोध और घृणा में से नहीं हो सकता।

विद्रोह और क्रान्ति में जमीन-आसमान का अन्तर है। विद्रोह बाह्य रचनाओं को बदल सकता है, लेकिन समग्रता में क्रान्ति घटित होने का एक ही स्थान है—मानव का अपना हृदय, अपना जीवन।

विवेक

विवेक का जीवन में क्या प्रयोजन है, यह मेरी समझ में नहीं आता। जहाँ जीवन अपनी समझ और अपनी उपलब्धि से जिया जाता है, वहाँ विवेक का प्रयोजन नहीं रह जाता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथार्थता का बोध होना और उसके विपरीत इच्छाओं का शमन होना, ये दो स्वतन्त्र घटना नहीं हैं। एक ही घटना के दो नाम हैं।

इच्छाओं, वासनाओं के पीछे अपनी जो क्षुद्रता है, अहन्ता है, अपना जो छिछलापन है, उसका बोध होते ही विवेक की जरूरत नहीं पड़ेगी। विनम्रता आएगी और उसके आलोक में एक नया प्रभात होगा, जिसमें सहजता से जी पायेंगे।

अहंकारी लोगों के हाथ में विवेक एक बड़ा ही शक्तिशाली अस्त्र है।

विश्राम

ऐसा कुछ समय प्रतिदिन निकालना चाहिए जब आप सावधान होकर शरीर और मन, इन वाहनों को विश्राम दें।

शिथिलता और विश्रान्ति में अन्तर है। विश्रान्ति में अवधान रहता है, शिथिलता में अवसाद आ सकता है। प्रतिदिन कुछ समय निकाल कर सभी प्रवृत्तियों, निवृत्तियों से अलग हो कर मन की गति को देखना चाहिए।

चौबीस घंटों में अपने शरीर, वाणी, मन के व्यवहार में कहाँ कैसी कुरूपता है, रुग्णता है, क्या शील है, क्या गुणवत्ता है, इसे देखें समझें। ज्ञान-तन्तुओं को विश्राम देने के लिए क्रिया के आस्थगन में गोता लगायें, नित्य स्नान की तरह।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन को जब आप विश्राम देते हैं, मन से सोचते नहीं हैं, तब भी तो आप जीवित रहते हैं। यदि आप केवल मन हों तो न सोचने की अवस्था में मृत्यु होनी चाहिये। इसका अर्थ यह हुआ कि तन की तरह मन भी एक आवरण है।

तन-मन के आवरणों के भीतर छिपा हुआ जो जीवन है, उस से साक्षात्कार मन के विश्राम में होता है।

व्रत

जिस का हम स्वयं प्रेरणा से, समझ-बूझ कर, सभान और सजग रह कर वरण करते हैं, वह व्रत है। जो परम्परागत आचार है वह तो रूढ़िमात्र है।

शब्द

ज्ञात का उच्छिष्ट है शब्द और वाणी। ऐसा कोई शब्द नहीं जो जूठा न हो।

शब्द एकदेशीय है। वह सत्य के अंशमात्र की ओर इंगित कर सकता है। कोई शब्द ऐसा नहीं है जो सत्य की पूर्णता का संकेत आपके सामने रख सके।

शब्द का जन्म जहाँ होता है, वहाँ पूर्णता है। लेकिन अभिव्यक्ति आंशिक होती ही है।

शब्द और शब्दकोशों में दिये हुए उनके अर्थ—इनकी माला गूँथ कर चेतना पर अलंकार पहनने से जीवन के अर्थ का आकलन नहीं होता।

* * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परा वाणी वह तत्त्व है जहाँ शब्द के परिधान सहन नहीं होते, मौन के वस्त्र ही अनुकूल पड़ते हैं।

पश्यन्ती का शब्द अनुभूति में भींग कर, नहा कर आता है; अनुभूति के रस से रसित है, प्रक्षालित है। लेकिन मध्यमा उसे वहन करके वैखरी तक लाये, इससे पहले ही वह रस वहन-प्रक्रिया में ही आधा रह जाता है। अतः पश्यन्ती का शब्द वैखरी की अपेक्षा परा के उन्मुख है।

वैखरी का शब्द बड़ा स्थूल, सीमित, कमजोर, खोखला है। उसमें समग्रता का स्पर्श नहीं। उसे चित्त में से होकर गुजरना पड़ता है। इसलिये वह दूषित हो ही जाता है।

विषय-विषयी के सम्बन्ध में चलने वाले क्रिया-प्रतिक्रिया के खेल का अपत्य है वैखरी शब्द। वह अद्वैत तक नहीं ले जा सकता, श्रोता तक निर्द्वन्द्व की सुगन्ध नहीं ला सकता।

* * * *

शब्द का कलेवर है मात्राओं से बना हुआ। उसके गर्भगृह में अर्थ है। द्वार खोलकर भीतर जाना पड़ता है और अर्थ के आलोक में खड़ा होना पड़ता है।

'अमन्त्रम् अक्षरं नास्ति'--कोई अक्षर नहीं, जिससे मन्त्र की सिद्धि न हो। फिर भी शब्दमय व्यवहार करने वाले हम निस्तेज, निष्प्राण रह जाते हैं, क्योंकि शब्दों पर तैरते हैं। भीतर जाकर अर्थ का आलोक उपलब्ध नहीं करते।

प्रत्येक शब्द के अन्तरंग के साथ संवाद करना, उसके रहस्य का उद्घाटन होने देना--यह बहुत कम लोग करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्द तो है छिलका। उसे उतार कर भीतर अर्थ की गुफा में घुसना पड़ता है, जिसमें अनुभूति का आलोक पड़ा होता है।

* * * *

आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति के शब्द वाणी का विलास नहीं, कल्पना का शृंगार नहीं, अनुभूति की रश्मि हैं। वे चित्-शक्ति की कलियाँ हैं जो खिलती हैं और अपनी सुषमा, सौरभ बिखेरती हैं।

शब्द तो प्रतीक हैं, अन्तर की अनुभूति के। उनका विनियोग नितान्त सावधान होकर करना पड़ता है।

शब्द सेतु हैं एक-दूसरे के हृदय तक पहुँचने के लिये, चेतना का परस्पर स्पर्श पाने के लिये। वक्ता और श्रोता दोनों सावधान रह कर सहयोग कर सकें तो इस सेतु की मदद से संकेतित अर्थ तक पहुँचा जा सकता है।

अनुभूति की ताजगी लिये, उसके सौरभ से भरे शब्द ही जिन्दा शब्द हैं। नहीं तो कहना पड़ता है कि शब्द मरे हुए हैं, या तो उधार लिये हुए है। किन्तु ऐसे शब्दों से चेतना का परस्पर स्पर्श नहीं हो पाता।

अनुभूति की अवस्था में तो चारों वाणियों का लोप हो जाता है। जब शब्द उठते हैं, तब अनुभूति की स्मृति को लेकर ही उठते हैं।

शब्द तो प्रकाश की किरणें हैं। किरणों पर से अन्दाज लगाया जा सकता है कि जिस प्रकाश-पुंज में से वे निकलती हैं, उसमें कितनी गहराई और शक्ति है। लेकिन किरण तो सूर्य नहीं है।

* * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'विश्व', 'समग्रता,' 'वैश्विक'—ये हमारे लिये शब्द-मात्र हैं। इनसे कभी हमारा साक्षात् नहीं हुआ। खण्डों से ही जिनका संबन्ध है, वे अखण्ड की बातें करें, अखण्ड के बारे में अनुमान करें, यह कुछ उचित नहीं।

शब्दों का विनिमय या व्यापार कोई खेल नहीं हैं। शब्द तो क्या—हीरा, माणिक, मोती हैं। "हीरा परखे जौहरी, शब्द को परखे साध"। हर शब्द का रूप, रंग, वजन है।

* * * *

इस देश में शब्द बोलना भी मुश्किल है। हर शब्द के अनन्त सहचारी भाव हैं। देश जितना पुराना है, परम्परा जितनी सनातन है, उतना ही शब्दोच्चारण मुश्किल है।

* * * *

शराब का नशा छूट सकता है, लेकिन शब्द का नशा छूटता ही नहीं है।

* * * *

शब्द भी हिंसा का साधन बनता है। बन्दूक से मरा हुआ आदमी तो दिखता है, लेकिन शब्दों से मरे हुए दिलों को ढोने वाली लाशों को जिन्दा आदमी कहा जाता है।

* * * *

सागर के किनारे तक ले जाना शब्दों द्वारा संभव है गोता लगाना, न लगाना हरेक की इच्छा का प्रश्न है। किसी-किसी को 'शब्द-बाण' लग जाते हैं। ऐसे ही किसी को लग जाए, इसी आशा में तो (हम) बैठे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शरणागति

शरणागति तो सत्य, जीवन, प्रेम के प्रति हो सकती है, व्यक्ति के प्रति नहीं। व्यक्ति के प्रति उसे समझने से ही संप्रदायों के जन्म हुए हैं।

शरणागति, प्रपत्ति के नाम से इस देश में आध्यात्मिक अपचारिता चलती है। किसी के अनुग्रह के याचक बनना, यह जो अध्यात्म के लिये अनिवार्य माना जाता हैं, इसमें से एक प्रकार की हीनता-ग्रन्थि का निर्माण होता है।

शरणागति कायरों का काम नहीं है। वह तो समर्थ की लीला है। वह तो जिसका स्वायत्त और स्वाश्रय जीवन है, उसकी प्रेमलीला है।

शरीर-विज्ञान

इस देश में एक विशिष्ट शरीर-विज्ञान पहले सिखाया गया है, जिसमें नाड़िवों और चक्रों का विश्लेषण है। वह विश्लेषण आज के शरीर विज्ञान की पद्धति पर नहीं हुआ है। उसका धरातल हो भिन्न है।

*   *   *   *   *

वैज्ञानिक दृष्टि से शरीर को, मन को कोई नहों देखते। वैराग्य, निग्रह, आत्मपीड़न—इनकी आलोचना सब करते हैं और उच्छृंखल, उत्तान भोगवाद को स्वतंत्रता मानते हैं।

शारीरिक और मानसिक आवश्यकताओं की तरफ़ वैज्ञानिक दृष्टि से देखना और उनमें सन्तुलन लाना सत्य की जिज्ञासा में सहायक होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शरीर, मन—ये जो उपकरण मनुष्य को मिले हैं, इन्हें स्वस्थ, सुन्दर, निरामय रखना अध्यात्म की पहली तैयारी है क्योंकि ध्यानावस्था में प्रवेश करना कमजोरों का काम नहीं है। उसके लिये फौलाद जैसे ज्ञानतन्तु चाहिये।

शिक्षण

मन के द्वारा अधिक से अधिक ज्ञान का संग्रह करना, उसमें व्यवस्था, परिमार्जन, परिष्कार लाना, यह आज शिक्षण का स्वरूप है।

* * * * *

आज का शिक्षण केवल मन को समृद्ध बनाने का उपाय है। लेकिन मन के परे जो चेतना है, उसका बोध, उसका प्रत्यय इस शिक्षण से नहीं आ सकता।

मानव का अपने बारे में आकलन जहाँ तक पहुँचा है, वहीं तक का शिक्षण समाज देता है। इस शिक्षण से मनुष्य न सुखी हो पाया, न उसके व्यक्तित्व में प्रसाद और सन्तुलन ही आ पाया और न ही आपसी संबन्धों में प्रेम, स्नेह, सहयोग आ पाया।

* * * * *

विश्व के विभिन्न देशों में समाज, अर्थ, राज्य आदि की जो व्यवस्थाएं कुछ सदियों से चली आ रही हैं, उन्हें चलाने के लिए अपेक्षित खजांची, मजदूर, क्लर्क आदि तैयार करने के कारखानों को शिक्षण-संस्था नहीं कहा जा सकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हस्तशिल्प की तरह जो मस्तिष्क-शिल्प आज के स्कूल-कालेजों में चल रहा है, वह शिक्षण नहीं है। स्कूल-कालेज के नाम से जो शिक्षण के कारखाने बने हैं, इनमें गणबद्ध और स्तरबद्ध विद्युत्-चालित मस्तिष्क तैयार किये जाते हैं।

स्मृति को समृद्ध बनाने और जानकारी को दिमागों में ठूंस-ठूंस कर भर देने का प्रयोजन अब बहुत जल्दी समाप्त होने वाला है।

* * * * *

"मानव ! तेरा अपने आप में होना ही तेरी कृतार्थता है, अपने में रहता हुआ ही तू जीता चला जा"— यह सिखाना शिक्षण है।

शिष्य

जिज्ञासा और अभिमुखता की सदेहावस्था को ही शिष्य कहते हैं। शिष्यता एक भाव है। शिष्य किसी व्यक्ति के नहीं हो सकते, क्योंकि शिष्य-भाव या जिज्ञासा या अभिमुखता केवल सत्य के प्रति हो सकती है। व्यक्ति के प्रति उसे जोड़ने वालों ने भूल की है।

शून्यता

शब्द-संग्रह, विचार-संग्रह का जो लोभ है, इसे छोड़ दें और अब तक जो कुछ संचित है, उसे झर जाने दें। फिर विशुद्ध शून्यता में खड़े हो जाएंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शून्यता की सघनता बड़ी खतरनाक है। फिर अहंकार को पाँव रखने को धरती नहीं रहती और ममता को हाथ फैलाने को परिधि नहीं रहती। वहाँ अतल गर्त है और दिशाहीन गति है।

* * * * *

रिक्तावस्था और शून्यावस्था में फर्क है। दृश्य जब द्रष्टा में समा जाता है, तब जो विशुद्ध चित्-सत्ता रह जाती है, उसमें जड़ता नहीं, रिक्तता नहीं। वह शून्यता है। सर्जन-शीलता की अतिशय सघनता है।

विशुद्ध चित्-सत्ता में, प्रयोजन और हेतु से रहित अवस्था में रहने वाले व्यक्ति का स्पर्श तो क्या, उपस्थिति भी, दूसरों के जीवन में आमूलाग्र परिवर्तन ला देती है। इसलिये वहाँ रिक्तता नहीं, भयानक सघनता है, बड़ी गहराई, बड़ी समृद्धता है उस शून्यता में।

रिक्तता अन्धकारमय है और शून्यता आलोक-मय।

शून्यता में संकल्प-विकल्प के आवरण, प्रत्यवाय, विक्षेप हट जाने के कारण आत्मा की स्वयम्भू गति काम करने लगती है। वहाँ कुछ करना नहीं है, वहाँ तो होगा।

मुरली में से जो पवन गया, वह सुर बन कर निकला। जिसे आप 'शून्य' कहेंगे, उसी 'पूर्ण' में से फिर जीवन बोलने लगेगा।

शोषण

सुरक्षा के लालची और सुख के खोजी क्या प्यार जानेंगे? इसलिए मनुष्य के जीवन और आपसी संबन्धों में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेम नहीं, सहयोग नहीं, बन्धुत्व नहीं, शोषण है शोषण ।

* * * *

अचेतन मन की शक्तियों का जिन्होंने विकास किया है, वे उन शक्तियों के सहारे दूसरे अज्ञानी लोगों का शोषण करते हैं और अध्यात्म एक व्यवसाय बन जाता है । पेशेवर आध्यात्मिक बन जाते हैं ।

कोई पैसे के सहारे, कोई सत्ता के सहारे, कोई विद्वत्ता के सहारे शोषण करता है और इस देश में अतीन्द्रिय अनुभूतियों के सहारे शोषण करने वालों का भी एक वर्ग खड़ा हो गया है । सत्याभिमुख और आत्माभिमुख लोगों को इस वर्ग से सावधान रहने की बहुत जरूरत है ।

संग्रह-त्याग

छोड़ना भी पकड़ने की ही प्रतिक्रिया है । छोड़ने वाला कहीं-न-कहीं पकड़ लेता है, तब छोड़ता है । छोड़ना और पकड़ना हमेशा साथ चलते हैं । इसलिए छोड़ना उतना ही बन्धन है जितना कि पकड़ना ।

संन्यास

जो संन्यास करना पड़ता है, वह कौड़ी के मोल का है । संन्यास हो जाना ही सच्चा संन्यास है ।

* * * *

ब्रह्मचर्य और संन्यास इन दो शब्दों की व्याख्या और आशय जब तक हम अपने पुरुषार्थ से नहीं बदलेंगे, तब तक स्त्री-पुरुष का सहजीवन असंभव है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मचर्य और संन्यास के स्तोत्र जिस देश में गाये जाते हैं, वह देश यौन भावना से अभिभूत है ऐसा समझना चाहिये। सारे समाज की चेतना में जब यह बीमारी फैल जाती है, तब उसके उदात्तीकरण के लिए ब्रह्मचर्य और संन्यास की महिमा गाई जाती है।

संवाद

यदि व्यक्ति के सम्बन्धों में तनाव, संघर्ष नहीं होगा तो बाहर से भी उसे सहयोग मिलेगा। इसलिए संवादी, संगीतमय जीवन आत्मसाक्षात्कार के अनुकूल है।

जिस व्यक्ति के जीवन में संवाद हो, मन, शरीर और बुद्धि में झगड़ा न हो, वह व्यक्ति सत्य की खोज के अधिक निकट जाता है। उसके भीतर सत्य की जिज्ञासा जागृत होने पर गति जल्दी बढ़ सकती है।

संस्कार

प्राकृत कार्य-पद्धतियों में से मन को स्नेहपूर्वक, कुशलतापूर्वक बाहर निकालने का रास्ता है संस्कार।

आदि-मानव से ले कर आज तक सारे संसार में मानवीय जीवन का जो विकास हुआ है, उसमें जो अनन्त संस्कारों की राशि जमा हुई है, वह हमारे भीतर पड़ी हुई है। कुछ संस्कार चेतन मन में हैं, और कुछ उस के नीचे की तह अचेतन मन में पड़े हुए हैं।

आप और हम कुछ नहीं हैं, वैश्विक चेतना की उत्क्रान्ति में कड़ियाँ मात्र हैं। न इस शरीर में हमारा अपना कुछ है, न मन और बुद्धि में।

*   *   *   *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कार बन्धन तब बनता है, जब उस की सापेक्षता को हम भूल जाते हैं। "जिन संस्कारों में मैं पला हूँ वही सार्वभौम होने चाहिये", यह आग्रह जब पैदा होता है, तब सम्प्रदाय जन्म लेते हैं, और फिर सम्प्रदायों के अहंकार में टक्कर होती है।

शिक्षण के द्वारा संस्कार-सिञ्चन करते हुए संस्कारों की सापेक्षता भी साथ ही साथ सिखाई जाय। ताकि अपने संस्कारों का अहंकार किसी को न हो। उन का आग्रह बुद्धि और चित्त में न हो।

*　　　*　　　*　　　*

मानव ने समझा है कि पशु से उसकी भिन्नता इसी में है कि उस के पास मन है। उसके पास बुद्धि है। इसलिये बुद्धि को संस्कारों से भर देने में ही मानव ने जीवन की सार्थकता मानी।

प्राकृत का संस्कार तो मानव जीवन का सौन्दर्य है किन्तु संस्कार को ही यदि उपभोग का विषय बना लिया जाय तो क्या होगा ?

*　　　*　　　*　　　*

संस्कार के बिना जिया नहीं जायगा, जीवन पशुवत् होगा। मनुष्यता का सारा सौन्दर्य संस्कार में है। लेकिन ये संस्कार उधार लिये हुए हैं या प्राकृत से संस्कृत बनने की क्रिया में से खुद गुजरे हैं, यह देखना होगा।

एक तो शिक्षण द्वारा बुद्धिपूर्वक ग्रहण किये हुए संस्कार होते हैं, दूसरे वे जो वातावरण में से अनायास, बिना भान के आत्मसात् हो जाते हैं। चित्त स्याहीचूस की तरह वातावरण में से संस्कार चूसता रहता है।

*　　　*　　　*　　　*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राकृत काम-विकार को एक व्यक्ति के साथ प्रेमबन्धन से बाँध देना संस्कार है। विवाह बन्धन प्रेम का बन्धन है। वास्तव में वह बाँधता नहीं है, वह तो काम-विकार से मुक्ति देने वाला संयुक्त जीवन है। प्राकृत विकार को संस्कृत पद्धति से जीवन में चरितार्थ करने का मार्ग है।

सख्य

अध्यात्म में सख्य की भूमिका को किसी ने मान्य नहीं किया है।

संसार में अध्यात्म के विषय में सख्य की भूमिका से आत्मनिवेदन करने की परिपाटी अब तक नहीं है। जो आत्मानुभवी हैं, वे सखा नहीं माने जाते, वे मार्गदर्शक या प्रमाण माने जाते हैं। असाधारणता, असामान्यता के पार्थक्य में उन्हें समाज धकेल देता है, और वे स्वयं भी धकेला जाना पसन्द करते हैं।

अध्यात्म के क्षेत्र में जिज्ञासु और अनुभवी के बीच सख्य की प्रतिष्ठा, भूमिका की समानता और केवल संवाद, सहवास और सान्निध्य में से जो कुछ जीवन का संक्रमण होता हो—वह साधना है।

"सख्यम् आत्मनिवेदनम्"—सख्य के लिये, स्नेह के कारण, आत्मनिवेदन के लिये ध्यानावस्था में प्रतिष्ठित व्यक्ति का बोलना होता है। उसकी वाणी में अतिशयोक्ति, अव्याप्ति, असत्य, मिथ्याप्रलाप, परनिन्दा नहीं होंगे।

सगुण-साकार

सगुण साक्षात्कार तो मन की गहराई में से उठता हुआ एक खेल है। लेकिन उसका मुक्ति से, आत्म-साक्षात्कार से, आत्मरत जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सगुण मूर्त्ति की उपासना की, उसी का चिन्तन, उसी का मनन, निदिध्यासन हुआ। आँख मूँदने या खोलने पर उसी के दर्शन भी होने लगे। लेकिन यह जरूरी नहीं कि उन दर्शनों का सम्बन्ध व्यक्ति के समग्र जीवन के साथ हो।

चित्त की सारी उत्कटता बटोर कर जिस रूप को आप देखना चाहें उसका प्रक्षेपण करने की शक्ति आपके मन में है। लेकिन भूलें नहीं कि यह मन द्वारा वाञ्छित मूल्य का प्रक्षेपण-मात्र है।

उत्कटता के साथ जब कल्पनाशक्ति का विहार और विलास होने लगता है तब कविहृदय रूप भी देख लेगा, नाद भी सुन लेगा। लेकिन समझने की बात यह है कि सभी नाद, सभी रूप, सभी रङ्ग भीतर पड़े हैं।

सगुण-साकार की उपासना तो सोपान-भर है। सुन्दरता की एक स्थान पर उपासना की तो वह उपासना संसार-भर में बिखरी हुई सुन्दरता को देखने का साधन बन जानी चाहिये।

सत्य

सत्य की उपलब्धि होगी तो अपने भीतर होगी। नहीं तो ब्रह्माण्ड में कहीं भी नहीं हो सकेगी।

सत्य की खोज एक प्रायोगिक विज्ञान है। अपने शरीर और मन के भीतर ही वह प्रयोगशाला है जहाँ प्रयोग करने होते हैं।

सत्य की एक चिनगारी, एक रश्मि, एक किरण भी चेतना को छू जाए तो आप के जीवन के हर पहलू में वह ऐसा घोर मन्थन, विप्लव पैदा कर देगी कि आप के सपने, आदर्श सब ढह जाएँगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक सभी स्तरों पर यथापूर्व बने रहते हुए सत्य की उपलब्धि असंभव है।

यथापूर्व क्यों नहीं रह पाता ? क्योंकि सत्य की खोज में पहले धारणा का प्रयत्न नहीं, पहले विश्लेषण का प्रयत्न होता है, खोदना पड़ता है, खोजना पड़ता है। इसलिए पहले संहार आ ही जाता है।

संसार में रहते हुए सत्य के मार्ग पर चलना हो तो आज संसार जिसे सफलता-विफलता कहता है, मान-अपमान सुख-दुःख कहता है, उस परिभाषा से ऊपर उठना होगा। संसार में रहेंगे, लेकिन उसका जीवन का मूल्यांकन लेकर नहीं चल पाएंगे।

सत्य बड़ा कृपा-कठोर है। उसकी कटुता तलवार की तीक्ष्णता जैसी है। कटुता तो आप और हम कहते हैं, वास्तव में उसमें कटुता कहाँ ?

असत्य की कोमलता और स्निग्धता के बजाय सत्य की कृपाकठोरता और तीक्ष्णता हमें बड़ी प्रिय है।

सत्य के प्रति मौन ही भाषा है। शब्द के माध्यम से बोलना तो गुनाह है। लेकिन क्या किया जाए ? बोलना ही पड़ता है।

सत्य में कुछ प्राप्तव्य नहीं है। सत्य कमाना नहीं है। 'मैं रहूंगा और सत्य भी रहेगा'—यह भ्रम निकल जाना चाहिए।

सत्य में संरक्षण की जरूरत नहीं है। वह तो चेतना की संपूर्ण निर्विचारता, निर्वस्त्रता है। विचार ही तो चेतना के परिधान हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्य की उपलब्धि अपने में एक अपूर्व, अद्‌भुत घटना होती है।

व्यक्तियों से सत्य महान् है नित्यनूतन है। और प्रत्येक खोज करने वाला जब सत्य को पाता है तब उसके लिये वह सनातन होने पर भी नूतन है।

सत्संग

आत्मोपलब्ध व्यक्ति के शरीर से, दृष्टि से, वाणी से जो शान्ति, संतुलन और सुख की किरणें फूट पड़ती हैं, जो सुगन्ध, सौरभ वहाँ से फैलता रहता है, उसे ग्रहण करना सत्संग है।

सुख, शान्ति और संतुलन के सम्मिश्रित सौरभ को आनन्द कहते हैं। वही स्वरूप है और उसी में रँग जाना सत्संग है।

शान्त व्यक्ति के पास जाने से शान्ति के स्पन्दन, प्रेम के स्पन्दन वातावरण में तैरते मिलेंगे।

जिस व्यक्ति के भीतर के सभी संघर्ष शान्त हुए हैं, जिसके संकल्प-विकल्प की तरंगें भी शान्त हो गई हैं, जिसमें करुणा और मौन एक ही अवस्था के पर्याय बन गए हैं, जिसमें व्यग्रता, व्यस्तता और एकाग्रता एक ही अवस्था के पर्याय हो गये हैं, ऐसे प्रेममय व्यक्ति के सहवास से अप्रत्यक्ष मदद होती ही है।

सहजावस्था में जो व्यक्ति प्रतिष्ठित हो गया हो, उसकी सशब्द, निःशब्द उपस्थिति दूसरों के जीवन में जो कुछ बेसुरा, बेताला हो, उसमें स्वर, लय, ताल का निर्माण करने में सहायक हो सकती है। वह मदद करना चाहता है या नहीं, यह प्रश्न ही नहीं उठता। चाहने के लिये वह शेष नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शान्ति के अनुभव में वातावरण की सहायता अवश्य होती है। सत्संग का हेतु यदि वातावरण का सहयोग लेना हो तो ठीक है।

आप जिज्ञासु हों तो प्रेम के स्पन्दन आप के साथ सहयोग कर सकते हैं।

जिज्ञासा की जागृति जिसके हृदय में हो चुकी है, वह यदि आत्मोपलब्ध व्यक्ति के सहवास में जाए तो उसके भीतर आनन्द की जो लहरें उठती रहती हैं, उनके तुषार को जिज्ञासु पकड़ लेगा और हो सकता है कि उससे जिज्ञासा की गति बढ़ जाए।

*　　*　　*　　*

अनुभूति-संपन्न, आत्मोपलब्धि-संपन्न व्यक्ति का सहयोग लेना, उसके सहवास से मदद लेना और उस पर निर्भर होना, भावात्मक या बौद्धिक रूप से उसके आश्रित बनना—इन तीनों में अन्तर है। इस देश में सहयोग, सहाय और आश्रय—इन तीनों में से विवेक छूट गया है।

मन को शान्त करने में जिस प्रकार वातावरण का सहयोग मिलता है, उसी प्रकार व्यक्तियों का सहयोग मिल सकता है। उससे हम लाभ उठायें, लेकिन सहयोग लेने के बाद व्यक्तियों के आश्रित हो कर और उनमें आसक्त होकर उन्हें बन्धन में जकड़ना और खुद भी जकड़े जाना ठीक नहीं है।

हम दीपक जलाते हैं उसके प्रकाश में काम करने के लिये, जीने के लिये, कदम उठाने के लिये, दीपक को आलिंगन देकर बैठे रहने के लिये नहीं। लेकिन हम दीपक के प्रकाश में इतने आकर्षित होते हैं कि तत्त्वतः ही मूल ज्योति को भूल जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस देश में सत्संग का अवसर होने पर भी सत्संग होता नहीं, संप्रदाय बनते हैं।

सत्संग के लिये जिस व्यक्ति के पास गए, उस के भीतर जो प्रेम की, शान्ति की अवस्था है उसे तो छोड़ दिया और व्यक्ति के शरीर में फँस गए तो क्या होगा ? शरीर की सुन्दरता से आगे बढ़े तो उसकी विचारशैली, भाषण-शैली या अभिव्यक्ति की सुन्दरता में फँस जाएँगे।

सत्संग कोई कर नहीं पाता। सन्त के हाड़-माँस, विचार, बुद्धि—इन सबको चीरते हुए भीतर जाना होगा। तब आप पाएंगे कि मन से परे जिस सघन शून्यता में उसका वास है, वहाँ ऐसा संगीत है जो सप्त स्वरों में बाँधा नहीं जाता, ऐसा सौन्दर्य है जिसकी परिभाषा मानवीय शब्दों में नहीं है, ऐसा प्रसाद है जिसके रस की तुलना संसार के किसी रस से नहीं हो सकती और उन सबका मूल स्रोत है आनन्द।

सत्संग के नाम पर यदि नये-नये विचारों का संग्रह ही साध्य बन जाए, विचारों के उपभोग तक ही यदि रुक जाना हो तो स्पष्ट है कि एक नये प्रकार का दम्भ, पाखण्ड समाज में फैलेगा और वही हो रहा है।

दिव्य असंतोष, ब्रह्म-जिज्ञासा, अध्यात्म-जिज्ञासा का वरदान न मिला हो तो चाहे जितने आत्मोपलब्ध व्यक्तियों के प्रवचन सुनने से कुछ नहीं होगा। उससे शब्द और विचार के प्रवाह पर तैरने का मजा मिलेगा, लेकिन वह एक सूक्ष्म प्रकार का उपभोग ही है, और कुछ नहीं।

* * * *

द्वन्द्वात्मक प्रतिक्रियाओं में दिन भर उलझे हुए तन और मन को लेकर हम जीते हैं। फिर कागज के फूलों में 'सेंट' छिड़कने की भाँति ताजगी के लिये सत्संग का पानी जीवन में छिड़कते हैं। ऐसे ताजगी नहीं आएगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्मविस्मृति सत्संग नहीं है। शराब के नशे और सत्संग के नशे में कोई बहुत अधिक अन्तर नहीं है।

सजीव अनुभूति

दूसरों की अनुभूति दोहराते-दोहराते हम भी अनुभूति तक पहुँचेंगे यह भ्रम है। सजीव अनुभूति के लिये परिश्रम करना पड़ता है।

समग्रता

समग्रता स्वयमेव गति है। गति का अवरोध खण्डित होने में है।

हमारी समग्रता के आधार में जो शक्ति है, उसकी उपलब्धि हमें है ही नहीं। वह शक्ति हमेशा बिखरी हुई रहती है। विचार-विकार की तरंगों में खर्च होती रहती है।

मन के मौन में सारी की सारी बिखरी हुई शक्ति वापस आ जाती है और अपनी समग्रता में उपस्थित होती है।

ऊर्जा को अपनी समग्रता में उपस्थित होने का अवसर देना ही मौन का प्रयोजन है।

अपनी समग्रता में ही ऊर्जा गतिशील हो सकती है। एकाग्रता की स्वयम्भू गति को सहजावस्था कहते हैं।

समग्रता में जीने वाले व्यक्ति के कर्म श्वासोच्छ्वास जैसे सहज होते हैं। उससे कर्म हो जाते हैं।

समग्रता में अधिष्ठित दृष्टि को लोग प्रेम कहा करते हैं, उसके सौन्दर्य को अहिंसा कहा करते हैं और जब वह व्यवहार में चरितार्थ होने लगती है तो बन्धुता कहा करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समग्रता में प्रतिष्ठित व्यक्ति प्रतिक्षण की घटनाओं को समग्रता के साथ जी लेता है—सुख आया तो सुख में, दुःख आया तो दुःख में। उसका कहीं भी प्रतिरोध या प्रतिकार नहीं है। कहीं भी अपने को संकुचित करके सुरक्षित रहने की आकांक्षा नहीं है।

समग्रता में जीने वाले व्यक्ति की संवेदन-शीलता शतगुण तीव्र और उत्कट होती है। लेकिन वह प्रत्येक क्षण में जीता है और अगले क्षण को पिछले क्षण के अनुभव से दूषित नहीं करता। उसके लिये भूत-भविष्य है ही नहीं। वह तो अखण्ड वर्तमान में है।

* * * *

बेचारी पूर्णता, समग्रता, उन्मुक्तता, सहजता भीतर दबी बैठी है। वह कैसे और कहाँ प्रकट हो? उसका तो क्षण-क्षण में गला घोंटा जाता है।

प्रभु तो प्रत्येक के हृदय में चिर प्रतीक्षा में बैठे हैं कि कब यह द्वार खोले और कब मेरा संचार जीवन में होने दे।

* * * *

समग्रता को भूलकर खण्डित दर्शन और खण्डित कर्म में आसक्त हो जाना ही पाप है।

प्रत्येक कर्म, प्रत्येक विचार, प्रत्येक भावना को जीवन की समग्रता के साथ जोड़ दिया जाये। और कुछ पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता साधना के लिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक बार समग्रता के साथ अनुसन्धान सध गया फिर तो चेतना समग्रता में प्रतिष्ठित हो जाती है और जो भी विचार उठते हैं उनका मूल स्रोत ही समग्रता हो जाती है।

*   *   *   *

कृत्रिमता से रासायनिक या दूसरी प्रक्रिया द्वारा कुछ समय के लिये निर्विचार अवस्था पैदा की जा सकती है, लेकिन उसमें मनुष्य के समग्र व्यक्तित्व का विकास नहीं है। समग्रता के विकास में अवस्था सहज हो जाती है।

समस्या

आत्मपरिचय पूरा होने के वाद ही फिर जिसे आप समाज, देश, राष्ट्र, कहते हैं, उनकी समस्याएँ देखने और छूने के हम अधिकारी वन सकेंगे। आज तो सब अनधिकार चेष्टा है।

चौवीस घंटे जिनके चित्त पर तनाव है, दबावों का आक्रमण है, वे अपने जीवन की यथार्थता को तो देख नहीं पाते, अपनी समस्या सुलझा नहीं पाते। समाज की, देश की, विश्व की समस्याओं को कैसे सुलझा पाएंगे ? लेकिन मनुष्य यह अविवेक करता है।

समस्या का यथार्थ दर्शन ही तव तक नहीं होता जव तक चित्त में कहीं तनाव हो। प्रत्येक तनाव दर्शन को विकृत वनाता है।

समस्या से सामना होते ही जिनका सन्तुलन खो जाता है, वे समस्या को सांगोपांग देख भी तो नहीं पाएंगे। वे उपाय क्या ढूँढेंगे ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो स्वयं रुग्ण हैं वे सुलझाने चले हैं मानव जाति की गम्भीर समस्याओं को। युद्धों का विराम चाहते हैं, लेकिन चित्त रुग्ण हैं, बुद्धि में तनाव है।

स्वस्थ और सन्तुलित होकर किसी समस्या को देखने लगेंगे तो समस्या अपनी एक-एक पंखुड़ी खोलती जाएगी और उसी में से उपाय निकल आ सकते हैं।

गम्भीरता चित्त में वह सन्तुलन भर देती है जिसका सौरभ है सर्वांगीण स्वस्थता। उस स्वस्थता को लेकर परिस्थिति को देखें, समस्या को समझें। समस्या के आकलन में से ही उसके सुलझने के रास्ते ऐसे खुलते आते हैं जैसे पुष्प की पंखुड़ियाँ खिलती हैं।

* * * * *

आज कोई भी समस्या आर्थिक, शैक्षणिक, राजनैतिक नहीं है। सब संघर्षों की जड़ें व्यक्ति की चेतना में हैं और चेतना में संघर्ष, दबाव, कटुता, क्यों हैं? इसीलिये कि मनुष्य का अपने आप के साथ संघर्ष है, अपने साथ ही परिचय नहीं, प्रेम नहीं।

* * * * *

आज समस्या गंभीर है क्योंकि कोई भी समस्या अब एक देश की नहीं, एक समाज की नहीं। सब समस्यायें विश्वव्यापक बन गई हैं। इन्हें समझने के लिये ऐसे मानवों की आवश्यकता है जिनमें गम्भीरता, सन्तुलन, स्वास्थ्य, धारण करने की शक्ति है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समाधान के उपायों की कमी नहीं है, कमी है स्वस्थ मानव की जो उन्हें अमल में लाये।

समाज

अभी मानव का जन्म हुआ ही कहाँ है जो समाज बन पाएगा? आकृति से मानव बने हैं, लेकिन प्रकृति और आशय से मानव बनना शेष है।

समुदाय में से समाज नहीं बनता है। जैसे पशुओं के झुण्ड घूमते हैं और जंगल में अपने-अपने दायरे बना लेते हैं, वैसे ही मनुष्यों के गिरोह इस विशाल धरती पर घूमते हैं। उनके गिरोहों और घरौंदों का नाम राष्ट्र है।

जिसने आत्म-परिचय नहीं पाया और जिसने जीना नहीं जाना, वह समाज का नागरिक बने और समाज के लिए कुछ करे, इसका अधिकारी नहीं है। आखिर मानव-समाज और पशुओं के झुण्ड या पक्षियों के गिरोह में कोई अन्तर तो होना चाहिए। लेकिन आज वह अन्तर दिखाई नहीं देता।

समाधि

ध्यानावस्था का चेतना को साक्षात्कार होने के बाद बुद्धि, वाणी, इन्द्रिय के व्यवहार में भी उस अवस्था के उन्मेष खिलने लगते हैं, तब समाधि होती है।

समाधि है ध्यान की अवस्था का जीवन में ओतप्रोत हो जाना। इसलिए 'समाधि में जाना' और 'बाहर आना' इन दोनों का यहाँ (सहज समाधि में) प्रश्न ही नहीं उठता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहजता

मनुष्य के जीवन में मन से परे जो चेतना का ग्रायाम है, उसमें सहजता है। उस सहजता का पशु-जीवन की स्वाभाविकता से कोई मेल नहीं है। भावनाग्रों के ग्रावेगों के वश रहना कोई सहजता नहीं है। दैहिक ग्रावश्यकताग्रों के निरन्तर उठने वाले ग्रावेगों की पूर्ति से तृप्ति पाना स्वाभाविक हो सकता है, लेकिन सहज नहीं।

ग्रात्मा की सहजावस्था या ग्रानन्द में प्रतिष्ठित व्यक्ति शब्द का ग्रौर मन का उतना ही उपयोग करता है जितना कि ग्रावश्यक हो।

* * * * *

सहजता ग्रौर दायित्व साथ नहीं जाते। जब तक व्यक्ति राग-द्वेषों के ग्रधीन है, तब तक ही ग्राप दायित्व की बात करें। सहजता में दायित्व भी नहीं ग्रौर कर्तव्य भी नहीं। जिसके लिए ग्रापको दायित्व ग्रौर कर्तव्य सिखाने पड़ते हैं वह वहाँ स्वभाव है।

सहजता को प्राप्त व्यक्ति का समाज में क्या उपयोग है ? वही जो जीवन में परिमल का है। मानव की परिपक्वता क्या होगी, इसके दर्शन वहाँ हो जाते हैं।

सहजीवन

सहजीवन की कला ग्रौर विज्ञान ग्रध्यात्म का विषय है। जो ग्रपने ग्राप को ही नहीं समझता, नहीं पाता वह दूसरे के साथ क्या जियेगा ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुद्धि-संचालित या मन-संचालित जीवन जीने वाले व्यक्ति एक साथ भले ही रहें, उनका सहजीवन नहीं हो सकता।

मन की, संस्कारों या विचारों की गति से मुक्त होने पर चेतना के नये आयाम में प्रवेश जब तक नहीं होता तब तक सहजीवन संभव नहीं।

सहजीवन के लिये मन से परे जाना और स्वाधीन होना आवश्यक है। स्वाधीन और स्वतन्त्र व्यक्ति ही एक दूसरे के साथ जी सकेंगे, एक दूसरे के साथ सहयोग कर सकेंगे।

प्रेम और सहजीवन जिन्दा व्यक्तियों में ही हो सकता है, मूर्च्छितों के बीच नहीं।

पहले अपने आपको समझना, अपनी समग्रता को पाना होगा। उस उपलब्धि में से फिर एक सहज, स्वाभाविक व्यवहार निष्पन्न होगा जिसे सहजीवन कह सकेंगे।

* * * * *

प्राकृत सह-अस्तित्व या सह-अवस्थान और सहजीवन में अन्तर है।

वृक्ष, पहाड़, नदी आदि में सह-अस्तित्व है, सहजीवन नहीं।

पशुओं में कुछ थोड़ा-सा सहजीवन है जिसका आधार प्रकृतिगत वासना है, क्योंकि वासनापूर्ति के लिये दूसरों के सान्निध्य, सहयोग या शोषण की अनिवार्यता रहती है।

मनुष्य में वासनागत सहजीवन तो है ही; उसके साथ उसने विचार-गत सहजीवन भी जोड़ दिया है। प्राकृत के बदले थोड़ा-सा सुसंस्कृत सहजीवन आया जो मन की भूमिका पर है।

* * * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमारा लोभ वस्तुओं का अपमान करता है और हमारी लालसा व्यक्तियों को अपमानित करती है। सहजीवन नहीं हो पाता, प्यार-प्रेम की तो बात ही छोड़ दें।

जिसकी सारी दृष्टि यहाँ पर है कि किसी से मुझे कितना सुख मिलेगा, उसका दूसरों से सम्बन्ध होगा कैसे ?

जो वस्तुओं या व्यक्तियों को अपने सुख का यानी अहंकार-तृप्ति का साधन समझता है वह सहजीवन का आनन्द कैसे पाएगा ?

सहायता

जो चलना चाहते हैं उनकी कुछ मदद हो सकती है, किन्तु जो चलना ही न चाहते हों, घर में बैठे-बैठे ही सब रास्तों का, गन्तव्य स्थानों का लेखा-जोखा बनाना चाहते हों, उनकी मदद कौन कर सकेगा ?

साक्षित्व

जन्म और मृत्यु—इन दोनों तटों के बीच में बहने वाला जो जीवन का प्रवाह है, उसमें साक्षित्व का अभ्यासी ही नहा सकता है।

आपके भीतर साक्षित्व का एक दीपक जलता है। आप इसे पहचानें, न पहचानें। इसका भान या अनुसन्धान आपको रहता हो या न रहता हो। वह आपकी निद्रा, स्वप्न को, जागृति के प्रत्येक कर्म को देखता है।

सुबह से रात तक के व्यवहार में एक तो करने वाला प्रत्यय दौड़ता है और दूसरा कुछ न करने वाला प्रत्यय समानान्तर दौड़ता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योग में या भोग में जो अटक गए हैं, वे साक्षित्व के उस दीपक को नहीं देख पाते। लेकिन यदि सजगता से, सावधानता से व्यवहार करें, कोमल संवेदनशीलता से जियें तो जीते-जीते फिर यह समानान्तर दौड़नेवाला प्रत्यय सुस्पष्ट होता जाता है।

वह (दूसरा) प्रत्यय ऐसा है जिसे विचार-विकार छू नहीं पाते, जिसे ज्ञान और अनुभूति छू नहीं पाते, जिसे निद्रा और जागृति भी नहीं छू पाती। वह निद्रा में भी वैसा ही जाज्वल्यमान है जैसा कि जागृति में।

* * * * *

अपने विचार को, विकार को देखने का साक्षित्व जिस दिन हम प्राप्त कर लेंगे, उस दिन बाह्य परिस्थिति और आन्तरिक प्रतिक्रिया— दोनों से हम एक साथ दूर हट जायेंगे। फिर सागर में मौजों की तरह, नदी में लहरों की तरह प्रतिक्रियायें उठेंगी और उन पर सवार होकर हम निकल जायेंगे, उनके नीचे दबेंगे नहीं।

शुद्ध सत्ता के स्पन्दन का बोध जब गहरा, तीव्र और उत्कट होता है तो फिर व्यक्ति तन-मन की क्रिया-प्रतिक्रियाओं, आघात-प्रत्याघातों के साथ चलता चला जाता है। बहता नहीं है, तैरता है। बहने वाले का प्रवाह के साथ मिलन तो होता ही नहीं है। तैरने वाला साथ भी हो सकता है, विरोध में भी जा सकता है। उसी का मिलन भी है। यह तो तैराकों का काम है।

आप जब बोलते हैं तो दो शब्दों, दो विचारों के बीच जो अन्तर रह जाता है, वहाँ तो मौन का ही स्पन्दन है, संगीत है। इसी प्रकार सभी कर्मों के बीच-बीच में अकर्म का, केवल चैतन्य के प्रवाह का, सत्ता के स्पन्दन का बोध हो सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साधना

साधना अपने जीवन में प्रयोगशाला खोलने का काम है।

शुद्धि, निर्दोषता, पवित्रता कोई साधने की वस्तु है ? किसी क्रिया का फल है ? अध्यात्म में भी कोई राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक कानून या दण्डनीति हैं—जिनका पालन करना पड़ता हो ?

अध्यात्म मानसिक कर्म का विषय है ही नहीं, यह जब तक समझ में नहीं आएगा, तब तक साधना में स्थूल परिणाम देखने की लालसा बनी रहेगी।

एकान्त में अपना सहवास अपने-आप को सहन नहीं होता है, इसलिये कोई रेडियो खोले या भजन गाये दोनों में कोई अन्तर नहीं है। एकान्त सहन न होना ही दोनों का अधिष्ठान है। अपने से दूर, जीवन से दूर भागने के लिये, जीवन-विमुखता में से जिस कर्म का निर्माण होता है, वह कभी साधना नहीं बन सकता।

आप का व्यवहार प्रतिक्रिया में से न हो, इसके लिये सावधान रहें,। वाह्य परिस्थिति और आन्तरिक प्रतिक्रिया दोनों से हट कर देखें और फिर व्यवहार करें। यही है साक्षित्व की साधना।

मन का खेल देखने में प्रशंसा भी नहीं करनी है, निन्दा भी नहीं। निषेध नहीं, स्वीकार भी नहीं। जब रोक-टोक बन्द हो गई तो मन का दौड़ने का आधा मजा तो खत्म हो गया।

साधना शुरू करने में प्रत्येक कर्म के लिये सावधान रहने का प्रयत्न होगा। शरीर का, वाणी का व्यापार मैं क्यों कर रहा हूँ ? इसका प्रयोजन क्या है ? इसके प्रति सावधानता रहेगी। तब शरीर और वाणी का दुरुपयोग एकदम शान्त हो जायगा। अतः पहला सोपान है अखण्ड, अहर्निश जागरूकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरा सोपान है शरीर की स्वस्थता की ओर ध्यान देना—आहार, विहार, निद्रा—सब सावधान रहते हुए करना। ध्यान और मौन की साधना के लिए फौलाद का शरीर चाहिए और बुद्धि में तलवार जैसी धार चाहिये। ध्यान समर्थों का काम है निर्बलों का नहीं।

अखण्ड जागृति है साधना। अखण्ड आत्मनिरीक्षण की जब तक आदत न हो जाए तब तक वह साधन है। जब वह स्वाभाविक बन जाती है तब साधना समाप्त हो जाती है। सिद्धि उपलब्ध होती है।

सावधानता

भेदन करने की शक्ति यदि कोई है तो सावधानता है। जो सभान नहीं होता, सजग, सावधान नहीं होता, वही अटकता है।

सावधान व्यक्ति की चेतना समग्रता में प्रतिष्ठित होने के कारण उसकी नजर से कुछ छूट नहीं सकता। उसकी संवेदनशीलता तलवार की धार जैसी सूक्ष्म हो जाती है। प्रतिक्रिया में वह शक्ति और समय नहीं खोता। कहीं रुकता नहीं, फँसता नहीं, अटकता नहीं। इसलिये सामान्य व्यक्ति से शतगुणित अधिक कुशलता ऐसे व्यक्ति में आती है।

सावधान व्यक्ति क्षण-क्षण में जीवन की गति से गति मिलाकर जीता चला जाता है। वह आनन्द की अवस्था का सब से बड़ा परिणाम है। उसे लाभ न कहें, क्योंकि लाभ लेने वाला फिर कोई दूसरा चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सावधानता का, जागृति का दीपक भीतर ले कर दिन-रात घूमें और देखें कि 'मैं शरीर का मालिक हूँ'—इस भावना से कितना व्यवहार होता है, और 'यह प्रभु का बनाया संसार है, इसमें जितना मेरे हिस्से आया है उतना करूँगा'—इस भावना से कितना व्यवहार होता है।

अवधान के आलोक में विकार को लाने के बाद विकार की आधी शक्ति समाप्त हो जाती है। अनवधान के अन्धकार में विकारों की पुष्टि है, अवधान के आलोक में उनका क्षय है।

सुख-दुःख

सुख देने की क्षमता वस्तुओं में, आप के चित्त में, तन में, मन में एक जैसी निरन्तर नहीं रह सकती। यही परिवर्तनशीलता है, गतिशीलता है। इसे रोकें नहीं और इससे डरें नहीं।

सुख दुःख की छाया है या दुःख सुख की छाया है। जैसे सफलता की छाया में विफलता पलती है, वैसे ही सुख की छाया में दुःख पलते हैं। हर्ष की छाया में शोक पलते हैं। ऐकान्तिक सुख, जिसमें दुःख का स्पर्श न हो—असम्भव है। क्योंकि सुख जीवन का तथ्य नहीं, चित्त की प्रतिक्रिया है, संवेदना है। संवेदनाओं को अनुभव करने की शक्ति भी देश, काल, परिस्थिति और संस्कार के अनुसार बदलती है। सुख एक सापेक्ष अनुभव है।

सुख जीवन का प्रयोजन इसलिये नहीं है कि सुख में, दुःख में, हर्ष में, विषाद में एक प्रकार की उत्तेजना है, उस में सन्तुलन नहीं है। उत्तेजना का अर्थ ही है सन्तुलन से विचलित होना। हर्ष, शोक, सुख-दुःख—सब में उत्तेजना है, और उत्तेजना स्वास्थ्य नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुख-संवाद

आत्मसाक्षात्कार, आत्मरति प्रतिपादन का विषय नहीं है। इसमें संवाद हो सकता है, लेकिन प्रतिपादन नहीं। बुद्धि की मदद से, तर्क के सहारे, भूतकाल में घटित घटनाओं के आधार पर प्रतिपादन हो सकता है, लेकिन आपने आत्मा को, आत्मदशा को भी बुद्धि का विषय बना लिया है जो वह है हीं नहीं।

यहाँ तो सहज उन्मुक्त संवाद है, प्रतिपादन नहीं। जहाँ तक बुद्धि का साम्राज्य है, वहाँ तक प्रतिपादन हो सकता है। जहाँ तक मन की पहुँच है, वहां तक अभिनिवेश, आवेश और आग्रह के साथ विषय को रखा जा सकता है। लेकिन आवेश और अभिनिवेश, प्रतिपादन, प्रचार—यह सब कुछ शान्त हो जाता है। शेष रह जाता है सिर्फ सुख-संवाद।

सुरक्षा

वस्तुओं से, व्यक्तियों से मिलने वाले सुख में सातत्य रहे, और व्यक्तियों, वस्तुओं के सम्बन्ध में से सुरक्षा मिले—ये ही जीवन के प्रयोजन बन गये हैं।

सुख के लिये वस्तुओं को आप ने जुटाया है और उन्हें सुरक्षित रखने के लिये सरकार बनी, कानून बने, पुलिस आई, सेना आई; और व्यक्तियों के संरक्षण के लिये आप के नीतिशास्त्र बने—बाँधने के लिये। जो बँधते नहीं हैं उन के लिए सजायें भी मुकर्रर हुई। फिर भी सुरक्षा कहाँ ? सातत्य कहाँ ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जहाँ कानूनों से संरक्षण मिलने की आशा नहीं होती, भरोसा नहीं होता, वहाँ बल-प्रयोग होता है। पति का पत्नी पर, पत्नी का पति पर, माता-पिता का सन्तानों पर, सरकारों का प्रजाओं पर, धर्मगुरुओं का धार्मिकों पर, गुरुओं का शिष्यों पर शासन चलता है। इतनी सारी व्यवस्था के बावजूद जीवन की गतिशीलता को कोई रोक नहीं पाते।

सुरक्षा के लिए रोकथाम में जिन्दगी निकल जाती है; और यदि कानूनों से काम नहीं चलता और व्यक्ति उस प्रकार बँध नहीं जाते तो फिर क्रोध है, घृणा है, उपेक्षा है; हिंसा के तो कितने ही साधन हैं हमारे पास।

यह सुरक्षा का पागलपन है, सातत्य की खोज है जो कि व्यक्ति मरण को सङ्कट, अमङ्गल, अशुभ समझता है।

दूसरों की आँखों में झाँक कर, उनकी तुला में खरे उतर कर, उनके नाप-तौल में प्रतिष्ठित सिद्ध होना—यही आप की सुरक्षा है।

सुरक्षा के उपासक होते हुए आप अपने ही प्रत्यय पर भरोसा नहीं रख सकते। प्रत्यय के दारिद्रय को बाहर की सम्पत्ति का ऐश्वर्य कभी दूर नहीं कर सकता। इसलिए जीवन निस्तेज, निष्प्रभ, कालिमा से छाये हुए रहते हैं।

व्यवहार में अत्यन्त पुरुषार्थ करने वाला व्यक्ति भी परमार्थ के नाम पर एकदम शिशुकक्षा (किण्डरगार्टन) का बन जाता है। चाहता है कि उसे सब बतलाया जाय। उसी में सुरक्षा है, अपने आप नहीं खोजेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सेवा

सेवा करने के लिये स्वस्थ, सन्तुलित व्यक्ति चाहिये। जिनके चित्त पल-भर के लिये भी स्वस्थ नहीं हैं, महत्त्वाकांक्षा की व्याधि जिनके अन्तरङ्ग को कुरेदती रहती है, ईर्ष्या, द्वेष, सत्ता की लालसा जिन्हें खाये जा रही है, वे क्या सेवा करेंगे ?

स्वस्थचित्त, सन्तुलित व्यक्ति के कर्म स्वयं ही सेवा बन जाते हैं। सेवा उसे करनी नहीं पड़ती। सेवा करने में भी तो अहङ्कार पुष्ट होता है।

तन और मन की गुलामी से मुक्त होने के बाद जो स्वायत्त कर्म प्रस्फुटित होता है, वह है सेवा।

व्यक्ति पहले अपनी सेवा करे। दूसरों की सेवा फिर उसे करनी नहीं पड़ेगी। उसके जीवन से सेवा झरेगी। जैसे मकरन्द झरता है पुष्पों से, चाँदनी झरती है चाँद से, वैसे ही प्रेम झरेगा। और प्रेम में जो जीता चला जाता है उससे जगत् का कल्याण होता है।

दुनिया की सबसे बड़ी सेवा स्वयं मानव बनना है। जब तक व्यक्ति स्वयं मानव नहीं बनता तब तक दूसरे किसी की किसी भी प्रकार की सेवा करने का दावा एक कल्पना का विलास है। अपनी अनन्त सम्भावनाओं को खिलने देना, फूलने-फलने देना और अपनी समग्रता में विकसित होकर सौरभ फैलाना—यही सबसे बड़ी सेवा है।

स्त्री

अपने शरीर से ऊपर उठने की शक्ति स्त्री में बहुत अधिक है। भूख, नींद आदि सामान्य धर्मों पर वह अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ममता की शक्ति से विजय पा लेती है। अब थोड़ा सा परिवर्तन यदि वह कर ले और यह समझ ले कि यह शरीर तो मेरा नहीं, उपयोग के लिये मिला हुआ एक यन्त्र है, तो जीवन बदल जायेगा।

स्त्री सर्जन करना जानती है, धारण-भरण-पोषण करना जानती है। बच्चे के बोझ को आनन्द समझने के लिये जो एक धृति चाहिए, धारणाशक्ति चाहिये, वह स्त्री में है। पुरुष को तो उसकी उपलब्धि ही नहीं है।

स्त्री को इतना समझने की जरूरत है। कि जिस बच्चे को जन्म दिया है, धारण-पोषण किया है, उसकी मालिक मैं नहीं हूं। जिस प्रकार मैं अपने तन की मालिक नहीं हूँ, उसी प्रकार बच्चे की भी मालिक मैं नहीं हूँ।

स्त्री को प्रेम की मूर्त्ति कहा जाता है, तो वह अपने प्रेम पर श्रद्धा रखना सीखे।

प्रेम का पथ स्त्री के लिये सुलभ है, हो सकता है। स्त्री को बहुत सीखना नहीं पड़ेगा। प्रभु की दी हुई इतनी देन उसके पास है कि वह यदि सावधान हो, जागृत हो तो संसार का रङ्ग-रूप ही बदल जाये।

जिस प्रकार परिवार के सभी व्यक्तियों को प्रेम के कारण सँभालने की शक्ति स्त्री में है, उसी प्रकार समाज में जितने दोष हैं, उनका प्रतिकार करने की और उन्हें क्षमा करने की शक्ति स्त्री को भक्तियोग से प्राप्त हो सकती है।

स्पन्दन

जड़ पदार्थ कुछ नहीं है। जो कुछ है, वह एक स्पन्दन है। यह सारा विश्व एक स्पन्दन-मात्र है। चिन्मय के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहज स्पन्दन का नाम विश्व है।

*　　　*　　　*　　　*

आपके भीतर जो विचार-विकार उठते हैं वे स्पन्दन बनकर आपके बाहर निकलते हैं—आँख से, जीभ से, श्वासोच्छ्वास से जो कुछ आप हैं, उसे आप बाहर देते ही रहते हैं।

विचार आपके भीतर उठा, उसके स्पन्दन आकाश को छू गये, उसे आप शब्दों के परिधान पहनायें, न पहनायें, स्पन्दन अपना काम कर ही गये। उन अनुच्चरित विचार-विकारों से ही वातावरण में तनाव-दबाव पैदा होते हैं।

स्पर्धा

तुलना एक सामाजिक मूल्य बन गया है। अर्थशास्त्र में भी स्पर्धा को मूल्य माना गया है। जिस दिन यह समझ में आयेगा कि ये अहन्ता की चेष्टायें हैं, उस दिन समाज का यह सारा मूल्यों का कलेवर ढह जायगा।

स्मृति

स्मृति एक शक्ति है, जो मनुष्य में विकसित हुई है, लेकिन उसका जितना उपमर्द होता है, उसके साथ जितना खिलवाड़ होता है, उतना शायद ही किसी और शक्ति के साथ होता हो। कोई काम न हो तो हम स्मृति से ही खेला करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वजीवन

आपके सामने एक नितान्त सामान्य व्यक्ति ही बैठी है, जिसने अग्नि में जलना देखा है, जलने का मजा भी लूटा है और जलने के पार जो जीवन है, मन और बुद्धि के परे जो चेतना का साम्राज्य है, उसको भी देखा है।

मैं तो आप लोगों में से ही एक हूँ, और अपनी सामान्यता का ऐश्वर्य किसी कीमत पर खोकर साधु-सन्त बनने की इच्छा भी नहीं है।

जिज्ञासु के जीवन में से हम गुजरे हैं। कोई गुरु नहीं, कोई पथ-प्रदर्शक नहीं. जंगलों में भटकना, गिरि-कन्दराओं में जाना, किसी का सहारा नहीं, केवल अपनी उत्कट जिज्ञासा के आलोक में ठोकरें खाते-खाते घूमे हैं। हम तभी आपसे कहते हैं कि उत्कटता जितनी बढ़ती जायेगी, उतनी ही मात्रा में वातावरण के स्पन्दन आपके अनुकूल बनते जायेंगे।

यहाँ (शिविर में) आपकी उत्कट अभिमुखता अवसर बनकर खिली है, फूली है, फली है। उसे देखने का आनन्द लूटने मैं आई हूं। कुछ देने के लिये नहीं। दिया जाता भी नहीं है, पाया जाता है।

आपके पास ग्रन्थों की बात नहीं करती। नितान्त सामान्य हूँ। निम्न मध्यम वर्ग के किसी कुटुम्ब में जन्म हुआ। लेकिन जिज्ञासा की ज्योति जिस दिन से जागृत हुई, उस दिन से कभी पथ पर अन्धकार नहीं आया।

आपके सामने वही बात रख रहे हैं जो जीवन का सार हैं, निचोड़ है। जो सभी शून्यों का निष्कर्ष देखा गया, जिसमें जी रहे हैं, वही बात कहेंगे आपसे, दूसरी नहीं।

* * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुझे कहीं पार्थिव नजर नहीं आता। पार्थिव के आवरण में चिन्मय की सत्ता ही दिखती है। अब आप यदि कहें कि नारियल की मलाई ही रहे, छिलका न रहे तो छिलके के बिना तो मलाई भी नहीं रह सकती।

बचपन में मुझे अव्यक्त सृष्टि से बड़ा प्रेम था। ऐसा लगा करता था कि व्यक्त सृष्टि अव्यक्त की छाया है। इस व्यक्त सृष्टि की स्वतन्त्र सत्ता है ऐसा नहीं लगता था। ऐसा लगता था कि सत्ता तो अव्यक्त में ही है, और यह तो प्रतिविम्ब है, छाया है। अब यह समझ में आ जाता है कि विविध आकार के, विविध प्रकार के जो पदार्थ हैं वे भिन्न-भिन्न आकार में वहने वाले स्पन्दनों के पुञ्जमात्र हैं। अत: भौतिक और पारमार्थिक—इन दो सत्ताओं की भिन्नता का जो भ्रम है, उसे तोड़ने का जो साहस करे वह हमारे साथ आगे बढ़े।

* * * *

वेदना, व्यथा और पीड़ा का उपहार लेकर आपके पास आए हैं, सान्त्वना का नहीं। जिन्हें परस्पर मोह हो, आसक्ति हो, वे ही सान्त्वना देते घूमते हैं।

मेरे पास पूँजी तो मेरी व्यथा, वेदना की ही है। ज्ञान और विद्वत्ता तो है नहीं। जीवित व्यक्ति हूँ और दोस्ती की कायल हूँ—इतना भर कह दूँ।

मेरी बातें मधुर तो नहीं लगेंगी; लेकिन कठोरता मेरे हृदय की नहीं है, आपके और मेरे जीवन का जो तथ्य है उसकी है।

* * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दों से परे जो निःशब्द की भाषा है, वहाँ तो हम मछली जैसे तैर लेते हैं। लेकिन जहाँ शब्द की सृष्टि में उतरना पड़ता है, वहाँ पल-पल में संकोच रहता है।

अहन्ता की कैद से मुक्त होकर मानव-मात्र प्रेम के साम्राज्य में सहजीवन का आनन्द ले सके—यही प्यास हमसे बुलवाती है।

* * * *

भारत में अध्यात्म पर मुँह खोलने में मैं बहुत सावधान रहती हूँ, क्योंकि इस विषय पर यहां जो कोई बोलता है, उसे लोग साधु-सन्त बनाकर समाप्त कर देते हैं। वह कितना कहे कि मैं कोई गुरु नहीं, मेरे पास कोई शिष्य नहीं, लेकिन उसके पास आने वाले तो गुरु-शिष्य का भावात्मक सम्बन्ध बना ही लेंगे।

आपके साथ जिस व्यक्ति ने यहाँ (शिविर में) संवाद किया, उसके पास सख्य को छोड़कर दूसरी कोई भूमिका शेष नहीं रह गई है। इसलिए यहाँ बोलना मार्गदर्शन के लिए नहीं था, प्रतिपादन के लिये नहीं था। चिन्तन की प्रेरणा जाग उठे, आत्मनिरीक्षण की प्रेरणा जाग उठे तो संवाद की कृतार्थता समझी जाएगी।

मैं एक विद्रोही व्यक्ति हूँ। मार्गदर्शक और चलने वाला, प्रमाण और उसको ग्रहण करने वाला इस संबन्ध के खिलाफ मेरा विद्रोह है।

दूसरों की अनुभूतियों का आधार नहीं लेना है, यह कहने वाला व्यक्ति अपनी अनुभूति का वर्णन आपके सामने रख कर आपको बाँधना क्यों चाहेगा ? जिसे जरा भी स्वसम्मान है, वह व्यक्ति ऐसा नहीं करेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसलिए, मन के मौन में क्या घटित होता है इसका वर्णन आपको सुना दूँ और आपका अपमान करूँ, इतनी अरसिक तो नहीं हूँ। अपनी स्वाधीनता मुझे जितनी प्रिय है उससे शतगुण अधिक आपकी स्वाधीनता प्रिय है।

* * * * *

दूसरे व्यक्तियों के जीवन के बारे में राय रखने की फुर्सत मेरे पास नहीं है। मैं जीने में मशगूल हूँ। राय क्यों रखूँ? राय रखने के लिए जानकारी का संग्रह करूँ, जानकारी की प्रामाणिकता के लिए तुलनात्मक अध्ययन करूँ, फिर उसमें से निष्कर्ष निकालूँ, इतना जीवन का अपव्यय करूँ?

मुझे ऐसा कोई व्यक्ति आज तक नहीं मिला है, जिससे मैं कुछ सीख नहीं सकी हूँ। क्योंकि एक-एक व्यक्ति अद्वितीय है। एक जैसा दूसरा नहीं है। किसी भी व्यक्ति से जब मैं मिलती हूँ तो वैश्विक चेतना का एक ऐसा पन्ना सामने आता है, जो पहले कभी नहीं पढ़ा था। मानवों के सहवास में ऐसा अद्भुत आनन्द आता है जो किसी को मन्दिर में जाकर मूर्ति के दर्शन में आता होगा।

* * * * *

(मेरे परिचय में) कहा गया कि भूदान छूटा और कुछ दूसरी ही प्रवृत्ति शुरु हुई। मालूम नहीं प्रवृत्ति शुरू हुई या निवृत्ति या जिसके साथ 'प्र' या 'नि' उपसर्ग लग सकते हैं वही (वृत्ति) स्वयं समाप्त हो गई। हम तो जीते चले जा रहे हैं, और जीवन में जो पाया जाता है, उसे बाँट लेने में आनन्द लेते हैं।

यह तो ऐसी व्यक्ति है जिसके पास प्रतिपादन के लिए कुछ भी नहीं, सुख-संवाद में जिसे आनन्द है, प्रतिपादन का आवेश-अभिनिवेश नहीं। कोई विचार-प्रणाली नहीं जिसका आग्रह रख सकूँ। यह तो बिना मिर्च-मसाले का भोजन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं तो आदिमानव के शरीर से लेकर आज के मानव तक जीती चली आई हूँ न। जो कुछ मानव ने आज तक किया उसके द्वारा मैं भी जीती चली आई हूँ। अतः आज मानवीय परिस्थितियों के लिये मैं (मानवमात्र) जिम्मेदार हूँ।

* * * * *

जिन्हें आशावाद वा निराशावाद के झूले पर बैठना हो वे बैठें। हमें तो जीने से मतलब है। निराशा छूती नहीं और आशा के खेल खेलने की फुरसत भी नहीं।

स्वभाव

जिसको धारण करना पड़ता है, वह स्वभाव नहीं है, जिसको ग्रहण करके जतन करना पड़ता है वह विकास नहीं है, वह अवस्थान्तर नहीं है।

राग और विराग जैसे एक लकीर के दो छोर हैं, वैसे ही सविकल्प और निर्विकल्प अवस्थायें भी हैं, क्योंकि ये सापेक्ष हैं। ये स्वभाव नहीं। स्वभाव तो प्रेम है, आनन्द है, जिसका सुख-दुःख से कोई सम्बन्ध नहीं।

सविकल्प के छोर पर खड़े होकर जो निर्विकल्प दिखता है उसी को स्वभाव मान लिया जाता है, लेकिन वह स्वभाव नहीं है। वह निर्द्वंन्द्वता है। द्वैतातीतता है।

स्वसंवेद्यता

मनुष्य की इतनी महिमा इसीलिए गाई गई है कि स्वसंवेद्यता और सर्जन-शीलता ये दो गौरवभूत तत्त्व प्रत्येक मनुष्य में पड़े हैं। इसलिये प्रत्येक मनुष्य में दिव्यता की ओर बढ़ने की संभावना है। वह अपनी समस्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संभावनाओं को खिलाने में, उनका विकास करने में समर्थ है।

मनुष्य के रूप में, वैश्विक चेतना में स्व-संवेद्यता खिल उठती है। पशु-पक्षी में वह नहीं है। ज्ञान की जो बाह्य परिस्थिति है, उसे समझना, चित्त की प्रतिक्रिया को समझना और प्रतिक्रिया की जड़ों को भी समझना—ये तीनों काम मनुष्य एक साथ कर सकता है। पशु-पक्षियों में यह सम्भव नहीं।

पशुओं में मन है, बुद्धि है लेकिन स्व-संवेद्यता नहीं है। संवेदनशीलता तो वनस्पति में भी है, क्योंकि नाद के, विचार के, वाणी के स्पन्दनों का परिणाम वनस्पतियों पर होता है, किन्तु स्वसंवेद्यता केवल मनुष्य में ही है।

नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, तत्त्वज्ञान, मानस-शास्त्र, भाषा, गणित, सङ्गीत, शिल्प इत्यादि का विकास मनुष्य ने स्वसंवेद्यता के सहारे ही किया है। तमाम संकेत या प्रतीक इसी के भरोसे बने हैं।

कर्म करना, कर्म करने की क्रिया को जानना और उसके हेतु का भी भान रखना—यह सब एक ही क्षण में मनुष्य के लिए सम्भव है, इसीसे वह पशु की अपेक्षा उत्क्रान्त चेतना वाला है।

स्वस्थता

स्वस्थता का रहस्य सन्तुलन में है। "स्वे तिष्ठति इति स्वस्थः" अपने स्वरूप में जो प्रतिष्ठित है वह स्वस्थ है। आयुर्वेद की भाषा में शरीर में त्रिधातु का साम्य स्वस्थता है, और त्रिगुणों के बीच चित्त का साम्य योग है।

चौबीस घण्टे में से कुछ न कुछ समय निकाल कर शरीर और मन को स्वस्थ रहने का अवसर देना चाहिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिन में सौ बार क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि के आवेगों से जिनका चित्त झकझोरा जाता है, आवेगों की हुकूमत में जिनका व्यवहार चलता है—वे व्यक्ति क्या स्वस्थ कहलायेंगे ?

आज सारा विश्व एक अपङ्ग मानव-मण्डल बन गया है। यह निर्विवाद सत्य है कि आज मानव का चित्त रुग्ण है। विचार और भावना की वैसाखियों के विना जो चित्त चल नहीं सकता, वह स्वस्थ नहीं है। निर्विचार, निर्विकार अवस्था ही चित्त के स्वास्थ्य का महज लक्षण है। चित्त की निर्विचारता-निर्विकारता ही जीवन का स्वास्थ्य है।

समाज की बुनियाद व्यक्ति है, योजना नहीं। जीवन की वास्तविकता व्यक्ति है, और यह व्यक्ति कहीं दिखाई नहीं देता। तन-मन की स्वस्थता में सहजता से खड़ा सुन्दर, सुभग मानव कहीं दिखता नहीं।

स्वाधीनता

अपनी उपलब्धि में जीने वाला व्यक्ति स्वाधीन, स्वतन्त्र होता है। इसलिये वह दूसरे किसी को गुलाम बनाना नहीं चाहता।

मन को शान्त होने देने का जो प्रयोग करना है, यही मनुष्य की स्वाधीनता कायम रखते हुए, मन से परे जो आयाम है, उसमें प्रवेश करने का द्वार खोल देना है।

स्वाधीनता या स्वतन्त्रता बाहर कहीं से लानी नहीं है। अपने प्रत्यय में जीने का साहस करेंगे तो दूसरे की आँख में झाँक-झाँक कर उसके अनुसार जीने की आदत छूट जाएगी। भय चला जाएगा, गुलामी चली जायगी। पर अपने भरोसे जीना जानते ही नहीं आप।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिंसा

पशुओं के परस्पर व्यवहार में अन्तिम प्रामाण्य शक्ति का है और मनुष्यों के परस्पर सम्बन्धों में अन्तिम प्रामाण्य हिंसा का है। पशु हिंसा नहीं जानता। जीव को जीव का भक्षण भी करना पड़ता है तो प्रकृतिगत धर्म के कारण। हिंसा तो मनुष्य के मस्तिष्क की उपज है।

हेतु, प्रयोजन

हेतु खोज होने नहीं देता है। क्योंकि हेतु में अपनी खोज का फल पूर्वनिर्दिष्ट रहता है। हेतु पर आरूढ़ होकर जो कर्म करते हैं, उनके हाथ कुछ आता ही नहीं।

बुरे हेतुओं को हटाना, और अच्छे हेतुओं को लाना, यह सारा द्वैत का साम्राज्य है।

कर्त्ता, कर्म और हेतु या प्रयोजन की त्रिपुटी आध्यात्मिक जीवन में नहीं है। वहाँ तो स्वकेन्द्रित सभी हेतुओं का विलय हो जाने के कारण शेष रह जाता है प्रेम का सहज प्रवाह, जिसमें से तन-मन की सभी धाराओं में झङ्कृत होता है जीवन का संगीत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम अनुबन्ध

(व्यक्तिगत पत्रों से संकलित)

अनासक्ति

भीतर अनासक्ति अवतरित होते ही बाहर सत्ता-सम्पत्ति चरणों में दौड़ेगी। उसके प्रति मोह नहीं एवं विरति नहीं—ऐसी अवस्था सध जाने पर संन्यास का ऐश्वर्य नस-नस में सञ्चरित होगा।

असत्य

असत्य के साथ क्रोध आता है। असत्य का जनक है अहंकार। असत्य की सन्तान है क्रोध। असत्य ही सब पापों का मूल स्रोत है। एक असत्य या भय की कोख से कैसी अनर्थ-परम्परा पैदा होती है।

सत्य को प्रकट न करना यह भी तो असत्य है। यदि दिन में कई बार कई कारणों से ऐसा मिथ्या व्यवहार होता हो तो चित्त कितना क्षीण और मलिन बनता होगा! कभी सोचा है?

असुरक्षा

आर्थिक-सामाजिक सुरक्षा, प्रतिष्ठा, सुविधा को छोड़कर अज्ञात की सर्वांगीण असुरक्षा में कूद पड़ना कोई खेल तो नहीं न। 'विमल' तो 'स्प्रिंगबोर्ड' है; उसके माथे पर पाँव रखकर, आत्मसुख के सागर में छलाँग लगाना है। जिस दिन छलाँग लगाओगी उस दिन प्रसाद से भर जाऊँगी मैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अहंकार

अन्तर्नैवेद्य प्रभु को तब ठीक पहुंचता है, जब अहंकार से वह मुक्त रहता है। साधक की साधना में, भक्त की उपासना में, योगी के योग में अहन्ता का स्पर्श जब तक रहता है, तब तक उसकी दुर्गन्ध से प्रभु बचना चाहते हैं।

प्याज-लहसुन की उग्र गन्ध से वैष्णव बचते रहते हैं। वह एक स्थूल व्यवहार होने के कारण आसान ही है, किन्तु अहंकार की उग्र गन्ध से बचना चाहिए यह संकेत वैष्णव को क्वचित् ही याद रहता है।

अहंकार जहाँ-जहाँ स्पर्श करता है, वहाँ-वहां सौदे की दूकान खोलता है। साधना के सौदे में अनुभूतियाँ खरीदना चाहता है। भक्ति के सौदे में ऋद्धि-सिद्धि चाहता है। योग के सौदे में अतीन्द्रिय शक्तियाँ चाहता है।

* * * *

मनुष्य को जिस प्रकार सद्गुणों का अहंकार होता है, उसी प्रकार दोषों का अहंकार भी हुआ करता है। दोषों का चिन्तन एक ग्रन्थि बन सकता है।

गुणों का गर्व झर जाता है, उसका झरना आसान है। लेकिन दोषों का दर्प गलता नहीं।

* * * *

अहं की माया बड़ी प्रबल है। चिता पर पहुँचने तक छाया जैसी साथ चलती है।

आत्मसमर्पण

आत्मसमर्पण का संकल्प-चित्त में उठना, शब्दबद्ध होना एवं उसका प्राञ्जल निवेदन हो जाना एक बात है; उसका तथ्य में परिणत होना दूसरी बात है। जब वह तथ्य में परिणत होता है तब दृष्टि एवं वृत्ति आमूलाग्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बदल जाती है। फिर विवेक करने की या लक्ष्मण-रेखा खींचने की आवश्यकता नहीं पड़ती। आत्मलक्षी दृष्टि व्यवहार में प्रतिबिम्बित हो जाती है। कुछ करना नहीं पड़ता।

आत्मसम्बन्ध

आत्मा जब अपनी तरफ खींचने लगता है तो विभीषण से बन्धुत्याग, प्रह्लाद से पितृत्याग कराता है। अशोक से राज्यत्याग और सिद्धार्थ से वनाभिगमन कराता है। तब सन्तजन स्वजन हो जाते हैं। रक्तसम्बन्ध से आत्मसम्बन्ध कहीं अधिक गहन-गम्भीर होता है। सत्याभिमुख श्रेयार्थी को प्रभु सँभाल लेते हैं।

आत्मिक सम्बन्ध मानवीय जीवन का अमृत है।

ऋजुता

चित्त की ऋजुता, नम्रता एवं स्निग्धता जीवन का परम ऐश्वर्य है जिसके बिना ज्ञान व्यर्थ है, कर्म निःसार है।

एकता (देश की)

इस देश के सुबुद्ध नागरिकों को देश की एकता कायम रखनी चाहिए। काया-वाचा-मनसा उसके लिये सावधान रहना चाहिये।

चेतना के स्तर

चेतना के अनन्त स्तर हैं। हर स्तर की शरीर पर रासायनिक क्रिया होती है। जो 'स्थायी भाव' होगा उस स्तर को 'सत्त्व' माना या कहा जाता है। एक ऐसा स्तर है जिसमें इस शरीर की और मन की मर्यादाओं का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। भूत, वर्तमान, भविष्य की सीमारेखाएँ धुल जाती हैं। अहन्ता, इदन्ता भाव निःशेष हो जाते हैं। द्वैत तो क्या, अद्वैत यानी एकता का प्रत्यय भी विसर्जित हो जाता है। देहभाव तो क्या, ब्रह्मभाव भी विसर्जन पाता है। शून्यता एवं पूर्णता मिट जाती है। निर्वाण एवं मोक्ष नामशेष हो जाते हैं। ओहो ! इस हाड़-मांस में आवृत ब्रह्माण्ड में कैसी अद्भुत घटनाएँ घटती हैं। जो देखा जाता है वह शब्द में बतलाना संभव नहीं। मौन के पास भी तथ्य के प्रकटीकरण की भाषा नहीं है।

जागृति

दिन-रात चित्त में जो तरंग उठते हैं वही तो अपना सत्त्व हैं। संसारी वृत्ति है या साधक की है यह देखना चाहिये। आँख मींचने से या घड़ी भर के सत्संग (?) से तो अपना काम नहीं चलेगा। अपना पथ है अखण्ड जागृति, अखण्ड सावधानता।

निःस्पृह, निरीह चित्त ही नित्य सावधान रह सकता है।

जिज्ञासा

चित्त निर्मल बने इसकी उत्कट पिपासा जाग उठे तो फिर देर नहीं होती। अभीप्सा का जाग उठना हृदय में प्रभु के आगमन की सूचना है।

* * * *

जिज्ञासा मूक साधना में परिणत होकर विनम्रता को जगाती है। रातदिन अपने विकास के सबूत प्रभु के पास माँगते रहना आस्तिकता का लक्षण नहीं, अहंकार या सन्देह की कुटिल ज्वाला है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन

आजीवन सहते जाना—यह 'जीना' नहीं है। जीवन में कभी निर्भय साहस भी करना पड़ता है। वह समय पर न किया तो आँसुओं की नदियाँ अकारण बहती हैं। आहों की आग में अन्तर झुलस उठता है। चित्त दमन-पीड़न के प्रहारों से क्षत-विक्षत हो जाता है।

देह-सम्बन्ध

"मैं देह हूँ, स्त्री हूँ, अमुक-कुलोत्पन्ना हूँ, कन्या हूँ, भगिनी हूँ"—यह देहात्मभाव अस्त हो और "मैं देहधारी हूँ, अर्धनारी-नटेश्वर का लिङ्गातीत अलिङ्ग अंश हूँ"—यह भाव जागना चाहिए।

देह-सम्बन्ध संयोगवश होते हैं। अनन्त जन्मों में अनन्त व्यक्ति माता-पिता बने होंगे—पति-पत्नी, पुत्र-कन्या बन्धु-भगिनी रहे होंगे—यह बोध जब जाग उठता है तब इस जन्म के देह-सम्बन्धियों से मोह स्वयमेव शान्त हो जाता है।

देहधारण के लिए किसी-न-किसी भाव का आलम्बन करना हो तो "मैं तेजस्वी, मेधावी, प्रज्ञासम्पन्न, क्रान्तदर्शी आर्य ऋषियों के कुल में उत्पन्न सन्तान हूं, सन्त-साधु मेरी बिरादरी, गण-गोत हैं, आत्मानुसन्धान मेरा धर्म है, आत्मरति मेरी क्रीडा है"—यह भाव धारण करें। आगे चलकर ये भी अस्त हो जाएँगे। "मैं हूँ ही नहीं, न ब्रह्म हूँ, न माया, न देह हूं, न आत्मा। 'मैं' निःशेष होकर 'तत्' शेष रह जाता है। वैश्विक चित्-शक्ति देह में विलास करती रहती है। उस सहज समाधि तक पहुँचना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पञ्चम पुरुषार्थ

धर्म की तत्परता, अर्थ की समृद्धता, काम की उत्कटता एवं मोक्ष की तटस्थता अर्थात् तत्परता + समृद्धता + उत्कटता + तटस्थता पञ्चम पुरुषार्थ के उपादान हैं। चार पुरुषार्थ इसमें अपना सर्वस्व उँडेल देते हैं। इसीलिये प्रेमी के जीवन में दक्षता का कौशल छलकता है, ऐश्वर्य की शान झलकती है, उत्कटता की पराकाष्ठा उमड़ती है एवं तटस्थता का सन्तुलन प्रसाद बन कर सर्वेन्द्रियों में से झरता रहता है।

पश्चिम की स्थिति

इधर (यूरोप, अमेरिका में) आत्मजिज्ञासा, धर्मजिज्ञासा दिन-पर-दिन उत्कट होती जा रही है। अध्ययन-मनन एकाग्र हो कर करते हैं। प्रवचन करने में, चर्चा करने में आनन्द आता है।

पश्चिम में आर्थिक सुरक्षा, भौतिक सुख-साधनों की प्रचुरता, भोग-विलास का उन्मत्त वातावरण एवं स्त्री-पुरुषों का अनिर्बन्ध परस्पर सहवास—इन सबसे युवकवर्ग ऊब गया है। वह अन्यमनस्क, विक्षुब्ध तथा हताश हो रहा है। धर्मजिज्ञासा एवं ब्रह्मजिज्ञासा जागृत हुई है, लेकिन दिशादर्शन, मार्गदर्शन करने वाला कोई नहीं।

हठयोग के मानसिक एवं शारीरिक चमत्कार दिखाने वाले बहुत 'योगी' 'महात्मा' घूमते रहते हैं। शब्दकुशल, पाण्डित्यचतुर कई वक्ता घूमते रहते हैं; लेकिन युवक उनके पास फटकना नहीं चाहते। उन्हें तो खोज है सत्य की, सत्यानुभूति से भीगे शब्दों की, प्रेमरसायन से रससिक्त संवाद की। यह देखकर मुझे जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खुशी होती है, वह वर्णन से परे है।

* * * * *

उत्तरापथ (नार्वे) में वेदों के कई विद्वान् मिले। उपनिषदों के ज्ञाता मिले। गीता-अध्ययन-मण्डल चलाने वाले प्रेमी मिले। वैदिक दर्शन एवं तत्त्वज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ है यह प्रतिपादन करने वाले मिले। और ये सब नार्वे-निवासी थे। वहाँ हवा के स्पन्दनों में विशुद्धता पाई। जन-जीवन पर आर्य संस्कृति की अमिट छाप पाई।

फ्रेञ्च मानस भावुक है। भक्तियोग, समर्पणयोग की आकांक्षा वहाँ प्रबल है। इंगलैण्ड कर्मयोग का जिज्ञासु है। स्विट्जरलैण्ड हठयोग और मानसविज्ञान में उलझा हुआ है। रामकृष्ण मिशन के अनेक स्वामी, स्वामी योगानन्द के शिष्य, योगी अरविन्द तथा रमणमहर्षि के भक्त—इस प्रकार कई लोगों ने गत शताब्दी में इधर काफी काम किया है। मेडम ब्लॅवड्स्की डॉ० एनी बेसेन्ट, कृष्णमूर्ति का इसमें योगदान रहा है। यह लिखना भूल न जाऊँ कि बौद्ध विचार, जैन-बुद्धिज्म, तिब्बती और कॉकेशस योग का भी काफी प्रचार हुआ है। भूमि तैयार है, हवा अनुकूल है, चिन्मय स्पर्श की आकांक्षा है।

प्रभुकृपा

प्रभु की कृपा अपरम्पार है। जरा उसको पुकारने की देर है। सन्तों की करुणा बन कर वह भक्त को प्रेमपाश में बाँध लेता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रभु अपने प्रेमियों के पास दौड़ते रहते हैं, सँभालते रहते हैं। तुम्हारी रक्षा का भार तुम पर है ही नहीं यह खूब याद रखना।

जिसने चरम सत्य, परमप्रिय की ओर कदम बढ़ाया हो, उसका हाथ पकड़ कर प्रभु साथ देते हैं। उन्हें प्रेमियों का व्यवसन है।

प्रेम

निरपेक्ष स्नेह और सख्य मानवीय जीवन का अमृत है।

* * * * *

प्रेम की अभिव्यक्ति में उन्मुक्त सन्तुलन हो। विवेक-जन्य संयम नहीं, सहज सन्तुलन।

* * * * *

प्रेम एक बार उद्‌भूत होने पर निवृत्त नहीं हो सकता। निवृत्त होता हो तो वह राग था प्रेम नहीं, यह बोध होना चाहिए।

* * * * *

स्नेह का क्षेत्र व्यापक बने, निरपेक्षता की गहराई से स्नेह समृद्ध हो, तब 'स्वदेशो भुवनत्रयम्' हो ही जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बन्धन

जो कर्म किया जाता है, उसके पीछे छिपे हेतु या कारण का भान न हो तो बोध कैसे होगा ? बोध न हो तो कारण-कार्य के द्वन्द्व से मुक्ति कैसे होगी ? द्वन्द्वमूलक द्वैतमय क्रिया बन्धन है, द्वन्द्वातीत कर्म मुक्तावस्था ।

भावदेह

भौतिक देह के साथ जो तदात्मता रहती है, वह सत्सङ्ग में पिघलने लगती है । फिर भावकाया का सर्जन भीतर हो जाता है । भावदेह में चित्त प्रतिष्ठित होने पर भाषा में नई ताजगी, नई रोशनी संचरित होती है । यह मंजिल नहीं, मुकाम नहीं है । केवल बीच की अनिवार्य अवस्था है । चिदाकाश यानी Higher space में जीने की अवस्था है । भाव-सम्बन्ध चिदाकाश में ही जनमते, पलते एवं फलते हैं । आगे चलकर भाव-सम्बन्ध स्वयमेव विसर्जित होंगे । भावदेह विगलित होगी । शेष रह जायेगा सजीव अद्वैत का सहज स्पन्दन ।

मधुराद्वैत

द्वैत का विनाश नहीं, द्वैत का उपभोग भी नहीं, द्वैत के आधार पर एकता का विहार—यही मधुराद्वैत का मर्म है ।

संसारी लोग द्वैत के जाल में फँस जाते हैं । उपभोग में उनके दामन उलझे रहते हैं । सुख-दुःख के खट्टे-मीठे फल चखते हैं । इसी में जीवन निकल जाता है उनकी आँखों के सामने से ।

तान्त्रिक उपभोग को मुक्ति का साधन बनाने के चक्कर में अटक जाते हैं । द्वैत का आकर्षण बना रह जाता है, उपभोग की सूक्ष्म वासना तैरती रह जाती है चित्ताकाश में ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योगी इन्द्रिय-दमन, निरोध-निग्रह के द्वारा द्वैत को वधिर बनाते हैं। उपभोग की वासना को कुचलते रहते हैं। मरने तक द्वैत से एवं उपभोग की वासना से डरते रहते हैं। बचने के उपाय खोजने में जिन्दगी बीत जाती है।

वेदान्ती—द्वैत पर माया-भाव का अध्यास करके उपभोग की वासना को साक्षि-भाव में 'उदात्त' बनाने के चक्कर में पड़े रहते हैं। केवल ज्ञान से द्वैतभाव का निराकरण होता नहीं है। मुक्ति के भाव से उपभोग की वासना निर्मूल होती नहीं है। या फिर मुक्ति एक लावण्यहीन, निष्क्रिय, जड़ावस्था बन जाती है।

मधुराद्वैत—प्रेम के प्रत्यय में उपभोग की वासना प्रवेश पाती नहीं। निरोध-निग्रह की आवश्यकता नहीं पड़ती। द्वैत के आधार पर यानी धरातल पर एकता समस्त सौन्दर्य, शुचिता एवं उत्कटता का वैभव लेकर विहरती है—उन्मुक्त सहजातीत समाधि में।

मैत्री

आत्मनिवेदन सख्यभाव की आत्मा है। मैत्री में दुराव, छिपाव हो ही नहीं सकता।

मैत्री का संकेत है आदान-प्रदान।

स्नेह एवं निश्छल मैत्री का वरदान जिसे मिल जाता है, वह जीवन में एक अमूल्य निधि पाता है। संसार के सारे रत्न एवं मणि मानव हृदय-रत्न के सामने नगण्य हैं।

योग

अन्तर-बाह्य में किसी भी संघर्ष के बिना जीना—यही तो योग है। विचार मात्र संघर्ष है। वेदान्त में विचार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को भी विकार माना गया है। भावना मौन को विकृत कर देती है। विचार-विकार के स्पर्श से दूषित अन्तरङ्ग में प्रेम का सञ्चार कैसे हो ? प्रेम है मौन की सहज गति।

लोकापवाद

लोग क्या कहेंगे, क्या सोचेंगे—इसकी जिम्मेवारी ढोते रहना अपनी स्वतन्त्रता को कुचलना है। तुम अपना जीवन जियो, लोगों को छोड़ दो उनकी नियत पर। समाज का अपवाद, सन्देह, आलोचना, बदनामी आदि राणा की विषप्याली समझ मीरा जैसे पी जाना चाहिए।

* * * * *

लोक का विरोध आरम्भ हो तब समझ लेना कि प्रभु-कृपा बरसने लगी है। भक्त को भगवान् से मिलता है अनुग्रह, किन्तु संसार से मिलता है अपमान, निन्दा, उपेक्षा। यह प्रेम से ग्रहण करना चाहिये।

वासना

वासना भोग से ही क्षय पाती है। वासना को निग्रह से दबाना उससे मुक्ति पाना नहीं है। वासना न उठे तो प्रभु-कृपा। उठे तो प्रामाणिकता से परितृप्ति का राजमार्ग अपनाना धर्म है।

शुद्धि

शरीर-शुद्धि आवश्यक है। शरीर ही तो अपना आसन है, साधन है। युक्त आहार-विहार से देह को पवित्र बना लेना, वाणी को सत्य के जल से प्रक्षालित करके पवित्र बना लेना, चित्त को मौन की दिव्य-गङ्गा में धो लेना—यही तो आधार-शुद्धि है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शुभेच्छा

मेरी शुभेच्छा है कि जिस आत्मानन्द के एकान्त प्रसाद में मेरी जीवन-यात्रा चलती है उसी प्रसाद से तुम्हारा रोम-रोम ओत-प्रोत हो उठे।

प्रभु करें आपके रोम-रोम में विशुद्ध प्रेमरस का सञ्चार हो। इन्द्रियाँ अपने विषय भूलकर आत्मा के प्रेम-रस का सेवन करना सीखें। मन-बुद्धि विचार-विकार की सङ्गति से मुक्त हो मौन के पात्र से छलकता आत्मरस सेवन करना सीखें। पार्थिव काया दिव्य तथा अलौकिक बन जाय। चिन्मय-पार्थिव का भेद समाप्त हो जाय। यही तो हुआ होगा चैतन्य के साथ। रामकृष्ण तो प्रेमकाय ही बन गये थे। पञ्चम पुरुषार्थ का वही वरदान आप पायें जिसमें चारों पुरुषार्थों की समृद्धि, ऐश्वर्य लहराता रहता है, यह शुभेच्छा है।

सत्य

सत्यनिष्ठा परमार्थ का महाद्वार है। मानसिक, वाचिक, कायिक सत्याचरण आत्ममन्दिर का सोपान है। सत्यमय जीवन ही आत्ममय जीवन की फलश्रुति है। आत्मरति की एकमात्र पहचान है जीवन के हर क्षेत्र में, हर समय में, व्यवहार की हर सतह पर सहज सत्यमय आचरण। व्यक्तित्व की समग्रता सत्य के आलोक से उज्ज्वल हो उठती है। आत्मवञ्चना को रञ्चमात्र अवकाश नहीं रह जाता। सत्य से प्रक्षालित जीवन निर्भय अर्थात् विनम्र हो सकता है। स्नेह तो सत्य की रश्मियों का नाम है।

* * * *

सत्य का विनियोग भी व्यक्ति-सापेक्ष हुआ करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्सङ्ग

व्यक्ति की जिज्ञासा प्रामाणिक हो तो उसे मार्गदर्शन कराने वाले स्वयं ही उसके पास पहुँच जाते हैं।

जब मनुष्य आत्माभिमुख होता है तो दस दिशाओं से सहयोग देने, मार्गदर्शन करने सन्त, ज्ञानी, योगी दौड़ पड़ते हैं। तुम्हारी आत्मजिज्ञासा जिस अनुपात में उत्कट, गहरी और व्यापक बनती जायगी उस अनुपात में सन्तजन तुम्हारे पास आकर राह दिखाते चलेंगे।

जिस अनुपात में तुम्हारा देहाध्यास घटेगा, आत्मभान प्रज्वलित होगा, उसी अनुपात में इधर से निःसङ्कोचता बढ़ेगी। जिस अनुपात में काया, वाचा, मनसा सत्यमय जीवन बनेगा उसी अनुपात में मुझसे निकटता बढ़ेगी।

एक बार हाथ में हाथ देने या लेने पर चिरकाल साथ रहना है। इस अकिञ्चन, अनिकेत, परिव्राजक के स्नेह का स्रोत तुम्हारे लिए सदैव बहता रहेगा। जब चाहो तब आना, किनारे बैठ विश्राम करना हो तो वह करना, गोता लगाना हो तो लगाना।

जो विमल कर सकी वह तुम क्यों नहीं कर सकोगे ? घबराहट होगी, ठोकर लगेगी, थकान प्रतीत होगी तब हाथ पकड़ लेना। सँभल जाने तक हाथ छोड़ना नहीं, न मैं भी छोड़ूँगी।

आज तक जैसे जीते आये हो, उसी प्रकार जीना हो तो मुझ जैसे अक्खड़, विक्षिप्त का साथ बढ़ाना उचित नहीं। मित्रभाव रखें, किन्तु सहवास बढ़ाना ठीक नहीं। आत्मार्थी व्यक्ति के नाते सत्य की खोज पर निकल पड़ना हो तो शायद मैं कुछ मदद कर पाऊँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं तो तरस रही हूँ—आत्मरत व्यक्ति के सान्निध्य, सहवास, सहजीवन के लिये। किन्तु कोई तन पर रीझकर तन की सेवा करने में चूर हैं, कोई मन पर मुग्ध हैं, कोई बुद्धि के दर्प में अन्ध हैं, आत्मरत प्रभुप्रेमी मिलें तब मैत्री कृतार्थ होगी।

सन्त

आत्मरत व्यक्ति तो होते हैं सदेह ब्रह्म। मानव वैसे ही प्रभु की उत्तम सगुण मूर्तियों में से एक है। किन्तु अनुभूति-सम्पन्न व्यक्तियों के शरीर के पार्थिव उपादान भी चिन्मय बन जाते हैं। उस विशुद्ध चैतन्य की आलोक-रश्मियों में अवगाहन का अवसर प्राप्त होना दुर्लभ योग होता है। उस आनन्द का वर्णन कौन कर सकता है ?

समग्रता

हर कर्म का सम्बन्ध जीवन की समग्रता से होना चाहिये। तात्कालिक भाव-तरंग से संचालित कर्म समग्रता से संवाद साधे यह देखना पड़ता है।

साधना

आत्मभाव में अहर्निश रहना साधना का मर्म है। तब 'मैं कर्ता भोक्ता हूँ' यह भ्रम शान्त होता है। कर्ता के मिटते ही कर्मबन्ध स्खलित होने का जीवन्त प्रत्यय आता है। फिर प्रभु जिलाते हैं, सन्त सम्हालते हैं। हमें जीना नहीं पड़ता। प्रयत्नों के मायाजाल से मुक्त होकर सहजता में प्रतिष्ठा हो जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सावधानता

सज्जनता, निष्कपटता के साथ-साथ कुशल सावधानता भी तो चाहिए ।

स्मृति

स्मृति का भूत दिल पर सवार हो जाये तो वर्तमान के दर्शन को वह कलुषित करता है ।

स्वजीवन

मेरे लिए जगत् और जगत्कर्ता भिन्न नहीं । सृष्टि उसी प्यारे का सगुण साकार रूप है । इसलिये दैहिक यात्रा भी संसारी कर्म नहीं, अपितु शिवयात्रा ही प्रतीत होती है।

* * * *

इस काया में प्रेमरस को छोड़कर और कुछ भी तो शेष नहीं है । गुरुपद का मुझे अनुभव नहीं, सख्य का है । सख्य को लूटने का, प्रेम पाने का जिसमें जितना साहस हो, विकार-विचार भस्म करके प्रेमाग्नि जलाने का, ज्ञान-अनुभव की आहुति चढ़ाकर प्रेमाग्नि को प्रज्वलित रखने का जितना साहस हो, वह उतना निकट आए ।

* * * *

पल-पल में सत्य के आलोक में आत्मनिष्ठा के आधार पर जीने वाले आत्मरत व्यक्तियों में से एक मैं हूँ । मुझे संसार में दूसरा कोई प्रयोजन है ही नहीं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्मुक्तता से उर्वरित जीवन तुम जी सको और उसमें मदद हो सके तो मैं करूँगी, यह है मेरा दृष्टिकोण। लेकिन उसके लिये यह मत समझना कि मेरे पास आकर रहना या जीना अनिवार्य है।

* * * *

मेरे प्रति 'अपराध' करने की या मुझे 'असंतुष्ट' करने की शक्ति संसार में किसी को उपलब्ध है ही नहीं। आशा, आकांक्षा, अपेक्षाओं का प्रपञ्च बहुत पहले झर गया है।

मुझे दुनिया में किसी से कोई अपेक्षा है ही नहीं। निराशा या दुःख तो आशा-अपेक्षा की छाया-मात्र हैं।

मेरा इस दुनिया में किसी पर तनिक भी अधिकार नहीं है, जो कुछ है वह अपने पर है, इसलिये किसी से विशिष्ट व्यवहार की अपेक्षा रखना मेरी मर्यादा के बाहर है। आशा की छाया में पलती है असफलता। अतएव दोनों से मुक्त रहकर सबसे उन्मुक्त, निश्छल प्रेम करना—यही सबसे सुखकर होता है।

* * * *

विदेश क्या है यह तो जानती नहीं हूं। सर्वत्र स्वदेश, सर्वत्र स्वजन हैं।

जिस पर दृष्टि घूमती है, वह बन्धु बन जाता है। जहाँ कदम धरती हूँ वह घर बन जाता है। सर्वत्र सदा स्वयं को 'निज निकेतने' ही पाती हूँ।

* * * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाति, धर्म, देश, वर्ण का भान तक आज मुझमें शेष नहीं है। कोई याद दिलाना चाहें तो भी याद रखना मुश्किल है।

*   *   *   *   *

यूरोप हो, अमेरिका हो या भारत हो—मेरे लिये सब समान है। संन्यासी को त्रैलोक्य स्वदेश ही नहीं, स्वजन ही नहीं, स्वरूप है।

*   *   *   *   *

जो सारे संसार को चलाता है उस पर सब कुछ छोड़ कर विश्रब्ध विश्वास से जीती चली आई हूँ। 'शिवकुटी' (अर्बुदाचल में निवास-स्थान) में एक अतिथि बन कर रहती हूँ। सब की सेविका हूँ यह समझ कर यथाबुद्धि सेवा करती हूं।

*   *   *   *   *

'पूर्णता' का दावा मनुष्य-शरीर में रहते हुए कोई कैसे कर सकता है ? यह दावा तो 'वाचारम्भरण'–मात्र होगा न ! 'प्रसाद', 'रस', 'सन्तोष' की अनुभूति मुझे है या नहीं यह तो जीवन देखने वाले तय करें। मुझे तो जीने से मतलब है और मैं खूब जिये जा रही हूँ। शौक से, मस्ती में जी रही हूँ। जीने से अलग कोई 'प्रसाद' या 'रस' हो तो उसकी मुझे आज जरूरत नहीं मालूम हो रही है। मोहब्बत खुले दिल से लूटती-लुटाती जा रही हूँ। सन्तोष की मुझे क्या परवाह है ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवनसागर में तैरते समय जो चुनौतियाँ सामने आती हैं, उनसे टक्कर लेने में, दुःखियों के साथ रोने में और हँसने में मुझे बड़ा मजा आता है जी।

*   *   *   *   *

प्राणिमात्र जहाँ मार्गदर्शक बन कर हर सम्बन्ध में उद्बोधन करता आया है, वहाँ यह कैसे कहूँ कि कोई सहायक नहीं हुआ। स्वीकार-अस्वीकार से परे आत्मिक सम्बन्ध में हर समय उपलब्ध पथ-प्रदर्शन प्रिय लगा है। बुद्धि के स्वीकार-अस्वीकार से पहले ही हृदय उसे आत्मसात् कर जाता है। उसकी चपलता के सामने मैं बेचारी विवश-सी रह जाती हूँ।

*   *   *   *   *

(सितम्बर, १९७० में गम्भीर अस्वस्थता के समय इंग्लैंड से लिखे गये दो पत्रांश नीचे उद्धृत हैं।—संपा०)

सवाल विश्रांति के अभाव का नहीं है। शरीर कमजोर भी नहीं। अन्तर्दशा बहुत उत्कट है। तीव्र है। उसका तनाव या दबाव वहन करने की क्षमता स्नायु-संस्थान में नहीं दीखती। रामकृष्ण परमहंस कहते थे कि समाधि अवस्था में रहने की अवधि बढ़ती जाती है तब आयु-मर्यादा घटती जाती है। देहातीत अवस्था में निरन्तर रहते हुए देह को कार्यक्षम रखना, प्रारब्ध-प्राप्त कर्मों को, सन्तुलित चित रखकर करते रहना यह नया प्रयोग है। समाधि दशा तक पहुँचते ही समस्त कार्य-व्यापार से अलग रहने का प्रयोग, शारीरिक एकांत का प्रयोग, भारतीय सन्तों ने किया। रमण महर्षि तो मौन रखते थे। फिर भी शरीर जल्दी छूटा। अब जरूरत है समाधि-दशा में रहते हुए व्यवहार करने के प्रयोग की। तभी मानवीय स्नायु-संस्थान को शक्ति की नवीन गुणवत्ता उपलब्ध होगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह आध्यात्मिक क्रांति है मित्रो ! इसमें आहुतियाँ पड़ने ही वाली हैं। मैं वहुत सजग, सभान, रहकर प्रयोग कर रही हूँ। यही है मेरी विश्व-सेवा।

* * * * *

निरन्तर समाधि-अवस्था में रहते हुए व्यावहारिक जगत् की सब जिम्मेदारियाँ निभाने की शक्ति मानवीय स्नायु-संस्थान में नहीं है। आज तक भारत में देहातीत अवस्था को 'निवृत्ति' से आवृत करके सुरक्षित रखने की परम्परा है। मेरा प्रयोग है उस अवस्था को ऐन्द्रिय स्तर पर व्यवहार में लाने का। केवल वाणी में नहीं, समग्र व्यवहार में। इस प्रयोग में ज्ञान-तन्तुओं पर तनाव पड़ कर शरीर की आयु घट सकती है। लेकिन उसे अनिवार्य मानना चाहिए।

* * * *

(१९४९, १९५५, १९५६, १९५९, १९६० इन पाँच वर्षों में हिमालय के विभिन्न प्रदेशों में यात्रा हुई थी। १९६७ में नारायण आश्रम की यात्रा हुई। वहाँ से लिखी गई कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं।—संपा०)

६ घंटे में २० मील चलकर ३,७०० फीट की ऊँचाई से ८,७०० फीट तक पहुँचना हुआ। यानी ५ हजार फीट की चढ़ाई रही। शरीर का थकना स्वाभाविक था, लेकिन इसका पता तो यहाँ तक पहुँचने पर चला। रास्ते में शरीर को चढ़ने का जिम्मा देकर मैं कहीं और चली गई थी। याद आया वचपन। पिताजी जी आलमारी से जब-तब योगवासिष्ठ उठाकर पढ़ा करती थी। 'देवतात्मा' हिमालय का उत्कट आकर्षण आयु के सातवें वर्ष से अवाधित चला आया है। दसेक वर्ष की उम्र में स्वामी रामतीर्थ के ग्रन्थ पढ़े, ग्रन्थ क्या पढ़े, उनके साथ न जाने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहाँ-कहाँ घूमी। हिमालय के शिखर चढ़ी, टिहरी गढ़वाल हो आई। आत्मरत राम-बादशाह की बादशाही में शामिल हुई। उनके आँसुओं में उस किशोरी के भाव-भरे आँसू मिल जाते थे। ओह! उस स्मरण से आज भी रोमाञ्च हो आता है। १२ वर्ष की उम्र रही होगी, जब स्वामी विवेकानन्द के ग्रन्थ हाथ आए तब क्या पूछना! उनके साथ सारे भारत की परिव्रज्या कर आई। नगाधिराज के द्वितीय दर्शन इस प्रकार स्वामीजी के साथ हुए थे। सशरीर हिमालय-दर्शन तो किये १९४९ में।

पिछली हिमालय-यात्रा (१९६०) के बाद गत ६ वर्षों में अन्तर्बाह्य विश्व बदल चुका है। कार्य की उपाधि तो कब की झर चुकी। ध्येय, आदर्श आदि का बोझ बुद्धि पर से कब का हट चुका। मूल्यों की उपाधि भी विलय पा गई। सच कहूँ तो विचार नाम का विकार भी शमित हो गया। शेष क्या रह गया? कुछ भी तो नहीं। शरीर है इसमें अपना क्या कुसूर? उसके रहने से ही लोगों को मेरे होने का धोखा हो जाता है। उस धोखे के कारण जो व्यवहार चलते हैं, उनका 'देखना' भर रह गया है।

* * * * *

चित्त अनायास हिमालय की तरफ उछलता रहता है। यहाँ (योरोप) से भाग जाने को जी चाहता है। संयम साध कर काम कर रही हूँ। "कामना नहीं, निषेध भी नहीं"—यह शील रहा है। आश्चर्य तो यह है कि विमल के शरीर-समेत सारी दुनिया एक चल-चित्र-पट जैसी लगती है। विमल का खाना-पीना, सोना-हँसना भी ऐसे दिखता है जैसे कहीं दूर से देख रही हूँ। लोगों का हँसना, रोना, जनमना, मरना लगता है जैसे कठपुतली का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाच हो। शरीर में रहना, साक्षिभूत होकर अवशिष्ट रहना क्या ईर्सा को कहते होंगे ? सदेह मृत्यु की अवस्था यही तो नहीं है ?

* * * *

परिव्रज्या की इच्छा नहीं है। हिमालय के हृदय में बसे नारायणाश्रम ने दिल चुराया है। आबू का और नारायणाश्रम का एकान्तवास भाता है। योरोप में आना, प्रवचन करना जरा भी नहीं भाता।

मुझे प्रवास का लोभ नहीं। उसमें अरुचि है, लेकिन परिव्रज्या चल रही है। प्रवास के लिये कोई प्रयत्न नहीं करती। मित्र आयोजन करते हैं, सभायें रखते हैं, स्नेह-वश चली आती हूँ।

* * * * *

लगता है भारत में प्रवास, प्रवचन आदि करना खतरे से खाली नहीं है। विमुक्त सहजता से जीना भी इतना दूभर क्यों हो जाता है ? लोग मुझे सन्त क्यों बना डालना चाहते हैं। परिष्कृत संवेदनशीलता को दिव्य क्यों माना जाता है ? मानवीय क्यों नहीं ? क्या प्रेम का भी मानवीय और दिव्य—ऐसा विभाजन हो सकता है ? मनुष्य दिव्यता की अभिव्यक्ति है। उसका कोई पृथक् अस्तित्व नहीं, लेकिन लोग दिव्य और मानवीय को दो पृथक् श्रेणियाँ मानते हैं। वे मानवता पर तथाकथित आध्यात्मिकता लाद कर मानवता का अपमान करते हैं। वे किसी व्यक्ति को दिव्य कहते हैं और उस व्यक्ति की स्वनिर्मित प्रतिमा की पूजा करते हैं, और अपने को उससे अलग मान लेते हैं। उस व्यक्ति के लिये ऊँचा पीठ बना कर उसे उस पर बैठा देते हैं और स्वयं अपनी संभावनाओं तक कभी उठते नहीं। वे मुझसे मिलना और प्रेम करना छोड़ देंगे, और मेरे सामने घुटने टेकेंगे, जिसे मैं कदापि सहन नहीं कर सकती। जीवन तो प्रेम के लिये है, नहीं, प्रेम ही जीवन है। प्रेम, एकता की अनुभूति है। ये सारी बातें जबान पर लाऊँ तो भी कौन सुनेगा ? मेरी वेदना समझ में आती है ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीय अनुबन्ध

(व्यक्तिगत वार्तालाप से संकलित प्रकीर्ण वाक्य)

वाणी में निरर्थक दीर्घसूत्रता शूद्रता है। अर्थवाहिनी, लक्ष्यभेदिनी, अमोघ-सूत्रात्मक वाणी ब्राह्मणत्व-सूचक है।

* * * *

लज्जा-उच्छृङ्खलता, संकोच-उद्दण्डता, विनय-धृष्टता—इन तीनों द्वन्दों से पृथक् रहते हुए स्वाधीन व्यवहार का जो संयम है, वही प्रेम है।

* * * *

आत्मानुसन्धान से जो पलभर भी विभक्त न हो वही वस्तुतः भक्त है।

* * * *

अनेकता के दर्पण में एकता अपना प्रतिविम्ब देखता हुई खेलती है, वही माधुर्य है।

* * * *

भावनावेश और भावावेश में महान् अन्तर है। रस जिसके समग्र व्यक्तित्व और व्यवहार में ओतप्रोत है, सामयिक और खण्डित आवेश-मात्र नहीं, वही रसिक है।

* * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुद्धि में शास्त्रज्ञान से जो तथ्य आकलित हों, भावना द्वारा प्रतिष्ठित हों, उन्हें घट में प्रत्यक्ष अवतरित करके घटित करके देखना ही साधना है।

शास्त्र, प्रतिभा और भावना जो कुछ उपलब्ध कराते हैं, उन्हें आत्मा में देखना, घटित करना, ब्रह्माण्ड को पिण्ड में, परमतत्त्व को अपने-आप में प्रकट होने का अवसर देना—यही है साधना।

* * * *

जैसे नाटक में दूसरों को 'पार्ट' सिखाने वाला अपना 'पार्ट' भूल जाया करता है, वैसे ही जीवन में भी होता है।

* * * *

दूसरों के प्रति अपने में अपेक्षाओं का निर्माण अथवा अपने प्रति दूसरों में अपेक्षाओं का निर्माण—यही बन्धन है। उस में अहंकार का सूक्ष्म विलास है।

* * * *

जीवन में प्राथमिकताओं का यथोचित विनियोग ही सन्तुलन है। प्राथमिकताओं में भूल ही असन्तुलन की जननी है।

* * * *

तन, मन, व्यवहार में—कहीं भी असावधानता प्रेमाभाव की सूचक है।

* * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निद्रा = मन का सहज, सम्पूर्ण मौन। जागृति = मन के मौन में जीवन के बोध का मुखरित हो उठना। योग = प्राणों का प्रयत्नपूर्वक बुद्धियुक्त मौन। मृत्यु = प्राणों का सहज मौन। मुक्ति = मन + प्राण का सहज समन्वित मौन।

* * * *

सन्तों का हृदय प्रभु की मुरली है। उसी में से वह प्यारी तान निकलती है जो सबका मन मोह लेती है।

सन्तों की उपस्थिति स्वयं ही संपूर्ण वातावरण को शान्तरस का अधिष्ठान बना लेती है। उनके अन्तर का प्रसाद, सौरभ सहज ही छलकता है, बिखरता है। और वाणी में सहज ही सिताधिक मधुरता प्रवाहित होती है।

ज्ञानेश्वर, रामकृष्ण परमहंस, चैतन्य महाप्रभु—ये एक ही चेतना के तीन स्वरूप हैं।

* * * *

भीतर-बाहर एकरस सत्यनिष्ठ रहते हुए जीवन के प्रत्येक क्षण को प्रभुमूर्ति के रूप में देखना ही सच्ची साधना है।

सुखरूप में यदि वे आते हैं तो दुःखरूप में भी वे उतने ही मधुर हैं। जो कुछ भी सामने आये उसका खुले हृदय से स्वागत करना, प्रेम से उसे गले लगाना, अनुभव करना—"नमोऽधर्मविपाकाय मृत्यवे दुःखदाय च"—उससे परे भागना नहीं, उसका तिरस्कार नहीं करना।

* * * *

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भय, संकोच, लज्जा, गोपन, तथाकथित विनय भी अहंकार का ही रूप है। नम्रता इन सबसे पृथक् है।

* * * *

दास्य, दैन्य आवश्यक तो हैं, पर हो सके तो शीघ्र ही सख्य तक पहुँचना चाहिए।

संघटनात्मक चिन्तन ही होना चाहिए। विघटनात्मक चिन्तन या नकारात्मक विचार आत्मा का अपमान है। अन्तःसुप्त शक्तियों को जगाने के बजाय यह उन्हें और अधिक मूर्छित कर देता है।

* * * *

आत्मजिज्ञासा, आत्मनिष्ठा, आत्मरति में ही मनुष्य-जीवन की सार्थकता है। आत्मदीप बनना ही सच्ची सेवा है।

* * * *

इस शरीर को काटो तो इसमें से रक्त नहीं, सन्तों की करुणा, स्नेह ही प्रवाहित होंगे।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi